स्वल्पार्घ ज्ञान-रत्नमाला के नियम

(१) इस माला के प्रत्येक रत्न का स्वल्प मूल्य रखना ही इसका मुख्य उद्देश्य है।

(२) जो महाशय ॥=) शुल्क जमा कराकर माला के सर्व ग्रन्थरत्नों के या १) जमाकर अभीष्ट ग्रन्थरत्नों के स्थायी ग्राहक बन जाते हैं उन्हें माला का प्रत्येक रत्न पौने मूल्य में ही दे दिया जाता है।

(३) ज्ञान दानोत्साही महानुभावों को धर्मार्थ बांटने के लिये कोई भी ग्रन्थरत्न कम से कम १० प्रति लेने पर ।-), २५ प्रति पर ।=), १०० पर ।≡) और २५० पर ॥) प्रति रुपया कमीशन काट कर दे दिया जाता है।

(४) जो महानुभाव ज्ञानदानार्थ इस माला में प्रकाशित होने वाले किसी भी रत्न की कम से कम १०० प्रतियों के ग्राहक उसके प्रकाशित हो चुकने से पहिले ही बन जाते हैं उनसे उनका आधा मूल्य लगाया जाता है और उनका शुभनाम भी उस पुस्तक के टाईटिल पेज पर छपा दिया जाता है॥

माला में आजतक प्रकाशित ग्रन्थ रत्न

१. वर्तमान चतुर्विंशतिजिन पंचकल्याणक पाठ—यह स्वर्गीय बाबूवर वृ...

श्री ऋषभ निर्वाण सम्वत् ४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९१९९
९९६०४७१

श्री ब्रह्मचारी मनसुख सागर जी कृत हिन्दी पद्यात्मक

और

श्रीयुत् चैतन्य महोदय कृत संक्षिप्त हिन्दी गद्यात्मक

श्री वर्तमान चतुर्विंशतिजिन-पुराण (प्रथम खण्ड)

श्री ऋषभ पुराण

प्रकाशक—शान्तिचन्द्र जैन (बुलन्दशहरी), बिजनौर

श्रीयुत्.................................दान द्रव्य से...... प्रति विना मूल्य वितरित

श्री वीर नि० शु० सं० २४७१ } प्रथमावृत्ति ५५० प्रति { मूल्य १)
श्री वीर नि० प्र० सं० २४५२ } जूलाई १९२६ ई० { माला के स्थायी गाहकों से ॥।)

करने के अभिप्राय से सुलोचना को, माने हुए पूर्वभवों का सारा वृतान्त सुनाने की आज्ञा दी। सुलोचना ने विस्तार पूर्वक अपने कई पूर्व जन्मों की सारी कथा कह सुनाई जिसका सारांश निम्न प्रकार है:—

(१) अब से चार जन्म पूर्व जब सुलोचना "मृणालवती" नगर के एक सेठ "श्रीदत्त" की रतिवेगा नाम की पुत्री थी तो वह उसी नगर के एक अन्य सेठ अशोकदेव के पुत्र "सुकान्त" को विवाही गई।

(२) उसी मृणालवती नगर के राजश्रेष्ठी सुकेत के भवदेव नामक पुत्र द्वारा जब रतिवेगा और सुकान्त दोनों स्त्री पुरुष अग्नि में डालकर मार डाले गये तो वे मरकर पुण्डरीकिणी पुरी के सेठ "कुवेरकान्त" के महल में रतिषेणा और "रतिवर" नाम के युगल कबूतरी कबूतर हुए। यहाँ दो जंघाचारण ऋद्धि-धारी मुनियों के दर्शन मात्रसे इस युगलको जातिस्मरण हो आया और परिणामों की कुछ विशुद्धी से पुण्य बन्ध किया।

(३) यह कबूतर कबूतरी का युगल किसी दिन एक बिलाव द्वारा (जो

हमारे यहां से मिलनेवाली

सर्वोपयोगी उर्दू पुस्तकें

मिथ्यात्वनाशक नाटक—इस अनुपम और अद्वितीय नाटक में जैन, बौद्ध, आर्य, मुहम्मदी, ईसाई, वेदान्ती, मीमांसक, नैयायिक, सांख्य आदि दुनिया भर के लगभग सर्व ही प्रसिद्ध और मुख्य मत मतान्तरों के सिद्धान्तों का सारांश एक भारी अदालती मुक़द्दमे के ढङ्ग पर ऐसे रोचक और चित्ताकर्षक शब्दों में दिखाया गया है कि इसका पढ़ना एक बार प्रारम्भ करके फिर पूर्ण किये बिना छोड़ने को कदापि मन नहीं चाहता। मुद्दई, मुद्दआअलेह, गवाह और हर फरीक़ के सर्व वकील आदि मिलाकर इस बड़े ही मनोहर नाटक के पचास से भी अधिक पात्र हैं। तीन भागों में प्रकाशित हो चुका है। तीसरे भाग में वकीलों की बहस के अन्तर्गत जिस उच्च कोटि के न्याय सिद्धान्त (मन्तक या लौजिक विद्या के सिद्धान्त) से काम लिया गया है तथा उसके पारिभाषिक शब्दों की जो व्याख्या ग्रन्थ के फुट नोटों में दी गई है वह ऐसी अपूर्व है कि उसे ध्यान पूर्वक समझकर पढ़ने से अच्छे २ वकील तथा बहस करने के इच्छुक अन्य पुरुष भी बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं।

मूल्य केवल १)

दम और धर्म पूर्वक अर्थ और काम का यथार्थ रीति के साथ पूर्णरूप से उपभोग करते हुए जब जयकुमार और सुलोचना का समय आनन्द में व्यतीत हो रहा था तो एक दिन राजभवन के किसी ऊपरी भाग पर बैठे हुए किसी विद्याधर और विद्याधरी के युगल को विमान में बैठे आकाश मार्ग से जाते देख कर "जयकुमार" को अकस्मात् जातिस्मरण होगया अर्थात् अपने पूर्व भव का स्मरण हो आया। और "हा प्रभावती, हा मेरी प्राणवल्लभा प्रभावती" कहता हुआ वह एक दम मूर्च्छित होगया। इसी प्रकार "सुलोचना" भी उसी स्थान में एक कबूतर कबूतरी के युगल को देखकर जातिस्मरण होजाने से "हा रतिवर, हा मेरा प्राणप्यारा रतिवर" कहती हुई मूर्छित होगई। जब दास दासियों द्वारा शीतोपचार किये जाने पर दोनों सचेत हुए तो दोनों अपने कई जन्मों से स्त्री पुरुष होते आने का सर्व सम्बन्ध जानकर एक दूसरे को और भी अधिक प्रेम की दृष्टि से देखने लगे। जिससे जयकुमार की अन्य स्त्रियों के मन में ईर्षाभाव अधिक बढ़ गया। उन्हों ने सुलोचना के मूर्च्छित होने को एक छलयुक्त त्रिया-चरित्र समझा। जयकुमार ने इस भाव को ताड़कर सर्व उपस्थित स्त्री पुरुषों के मन की संशय दूर

रामचरित्र——जैन रामायण का सार उपन्यास के रूप में। मूल्य ॥)

हनुमान चरित्र——एक प्राचीन संस्कृत रामायण के आधार पर वीर हनुमान की जन्मकुण्डली व वंश-वृक्ष आदि सहित बड़ा ही चित्ताकर्षक ऐतिहासिक उपन्यास। भाग १, २, ३, मूल्य २।=)

ब्रह्मगुलाल चरित्र——(वैराग्य कुतूहल नाटक) संसार की असारता रोचक शब्दों में दिखाने वाला एक ऐतिहासिक दृश्य। भाग १, २, मूल्य ।)

भोज प्रबन्ध नाटक (गद्य पद्य)——नीति और शिक्षा का एक अद्वितीय ड्रामा। मूल्य =)॥

हफ़्त जवाहर (सप्तरत्न)——वैद्यक, गणित, योग, सांख्य, स्मृति, शिक्षा, व्यापार सम्बन्धी अमूल्य चुटकुलों और लटकों का संग्रह, मूल्य ॥≡)

नशीली चीजें——शराब, भङ्ग, गांजा चरस आदि सर्व प्रकार के नशीले या मादक पदार्थों के गुण दोष आदि। मूल्य =)॥

योगसार (आचार्य कृत योगसार का अनुवाद)——आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान का सार। मूल्य ≡)

अनमोल विधि----त्रिकालवर्ती किसी अङ्गरेज़ी ज्ञात तारीख़ का दिन या ज्ञात दिन की तारीख़ अर्द्ध मिनिट से भी कम में मौखिक (ज़िबानी) निकाल सकने की बड़ी सुगम और अद्वितीय विधि, मू० १) । दो रुपये से अधिक मूल्य की पुस्तकों के ग्राहक को बिना मूल्य ।

श्री जम्बूकुमार नाटक हिन्दी---अन्तिम केवली भगवान "श्री जम्बू स्वामी" की कुमार अवस्था के केवल दो दिन के अति पवित्र जीवन चरित का दो ही रात्रि में रङ्गस्थल (स्टेज) पर दिखाए जाने योग्य यह एक गद्य पद्यात्मक हिन्दी भाषा का बड़ा ही मनोहर दृश्य काव्य है । शृङ्गार, वैराग्य, शान्ति (अध्यात्म), हास्य और करुणा आदि अनेक रसपूर्ण रङ्गबरंगे शब्दों से चित्रित करके जिसका भाव पूर्ण चित्र चतुर चित्रकार (नाटक रचयिता) ने कुछ ऐसे हृदयग्राही ललित वाक्यों में खींचा है कि जिसे एक बार देखकर बारम्बार देखने की उत्कण्ठा मन में बनी ही रहती है । यह अपूर्व नाटक ५ अंकों, ११ दृश्यों और कई गर्भाङ्कों में विभाजित है ।

इसके अतिरिक्त इस नाट्य-ग्रन्थरत्न के अन्त में नाट्य शास्त्र या नाट्यकला सम्बन्धी ५० मुख्य और कई एक अन्यान्य नाट्य परिभाषाएँ उनकी व्याख्या और अंग्रेज़ी नामों सहित दी गई हैं जिस से इस नाट्य ग्रन्थरत्न की न केवल उपयोगिता ही बढ़ गई है, प्रत्युत यह केवल नाटक ग्रन्थ ही न रह कर एक अपूर्व "नाटक-कोष" भी बनगया है । यह अभी छप रहा है । साइज़ २०X३० सोलह पेजी की पृष्ठ संख्या लगभग १५० (डेढ़सौ) रहेगी । मूल्य लगभग ।||) रहेगा ।

—शान्तिचन्द्र जैन, बुलन्दशहरी
वीर प्रेस, बिजनौर (यू० पी०)

॥ ॐ ॥

॥ श्रीजिनाय नमः ॥

श्रीऋषभ-पुराण

ॐ नमः सिद्धेभ्यः । अथ काष्ठासंघी श्री सोमाचार्य जी [illegible]
श्री वर्त्तमान चतुर्विंशतिजिन पुराणान्तर्गत "श्री ऋषभ
पुराण" की श्री ब्रह्मचारी मनसुखसागर कृत
भाषा छंदबद्ध टीका लिख्यते ॥

अथ मङ्गलाचरण ।

छप्पय—श्री संसेवित चरण कमल युग सब सुख लायक,
श्री शिवलोक त्रिलोक ज्ञानमय होत सुनायक ।
पंच-शतक षट-त्रास प्रमान । [illegible]

अनमित सुख उद्योत कर्म्म बैरी घनघायक,
ज्ञान भानु प्रद्योत जासु पद सब सुख दायक।
ऐसे महन्त अरहन्त जिन, सेवहु निशिदिन भाव सों।
पावो अवश्य अविचल सदन, वीतराग गुण चाव सों ॥ १ ॥

दोहा—अर्हंत प्रभु को सुमरि कै, सिद्ध चरण चित लाय;
अष्टकर्म्म-मल त्याग कै, अष्ट महागुण पाय ॥ २ ॥

सवैया ३१ (घनाक्षरी छन्द)—ज्ञानावरणी के गये ज्ञान को उद्योत होत, दर्शनावर्णी गये सब षट द्रव्य पेखिये। वेदनी के नाशे निराबाध गुण होत सार, मोहनी के नाशे शुद्धि चारितविशेखिये ॥ आयुकर्म नाशे अवगाहन सुथिर होत, नामकर्म नाशे तें अमूर्तीक देखिये। गोतकर्म नाशे तें अगुरुलघु गुण होत, अन्तराय

नाशे तें अनन्तवीर्य लेखिये ॥ ३ ॥

दोहा—पंचाचार क्रिया धरें, गुण षट-तीस प्रधान।

सो आचारज नमन तें, पावें पद निर्वान ॥ ४ ॥

पंच बीस गुण जे धरें, पढ़ें पढ़ावें सार।

उपाध्याय मम मन बसो होहु सुमति दातार ॥ ५ ॥

नगन दिगम्बर जे रहें, आठ-बीस गुण धार।

सो साधू प्रणमूं सदा पाऊँ भवदध पार ॥ ६ ॥

ये पांचों पद सुमरि कै, बन्दूं शारद माय।

जा प्रसाद बुध होय मुझ कहूं कथा सुखदाय ॥ ७ ॥

सवैया ३१ (घनाक्षरी)—परम पुनीत हिम-भूधर*प्रगट

*हिमभूधर—हिमाचल पर्वत।

पंच-शतक षट-बीस प्रमान। योजन कला षटाधिक जान॥

भई, सकल जगत जन पाप नाश करनी। एकादश अंग औ उपांग जु है चार दश, द्रव्यषट तत्वसात धारा रूप बरणी ॥ बचन विलास भास भासत अमल जाके, लोकालोक लोकियत शोक सब हरनी। ऐसी जिनबानी भव्य-जीवन के मन मानी, प्रानी पार करबे को एक शुभ तरनी ॥ ८ ॥

दोहा—नमस्कार कर सरस्वती, गणधर शीस नवाय।
पद्मनन्दि मुनि आदि गुरु, प्रणमूं सब वर दाय ॥ ९ ॥
लोहाचारज मुनि कही, प्राकृत-संस्कृत रूप।
कालदोष बुध हीन अति, भाषा रची अनूप ॥ १० ॥
तीर्थङ्कर-कथ कहन को, मम मेधा*अति हीन।
गुरु-प्रसाद वर्णन करूं, भक्ति-भाववश कीन ॥ ११ ॥

*मेधा—बुद्धि

अथ कथा-भूमि ।

(१) मगध देश और मगधेश श्रेणिक

चौपई १५ मात्रा-जम्बू-द्वीप द्वीप है सार । लख योजन ताको विस्तार
मध्य सुदर्शन-मेरु प्रधान । महिमा को कवि करे बखान ॥ १२ ॥
पन्दरह कर्मभूमि जे सार । जिनपति उपजें सुखदातार ॥
सुरपति जिनपति को लेजाय । सहसअठोतर कलश ढराय ॥१३॥
अष्ट प्रकारी पूजा करै । जय जय नान्दिवृद्धि उच्चरै ॥
सो सुमेरु-गिरि सोहै सार । वर्णन करत होय विस्तार ॥ १४ ॥
ताके पूरव पश्चिम जान । क्षेत्र विदेह महा सुखदान ॥
ऐरावत उत्तर दिश कहा। भरत-क्षेत्र दक्षिण दिश लहा ॥ १५ ॥
पंच-शतक षट-बीस प्रमान । योजन कला षटाधिक जान ॥

तहाँ खंड षट सोहें सार। आरज खंड मुक्ति दातार॥ १६॥
मनुज अनारज उपजें जहां। म्लेच्छखंड सो वरते तहां॥
आर्यखंड नर आरज होंय। कर्मकाट पहुंचें शिवलोय॥ १७॥
मागध नाम देश तहां बसैं। अमरपुरी की शोभा लसै॥
पर्वत पांच अधिक शोभन्त। नरनारी जनमन मोहन्त॥ १८॥
विपुलाचल विभारगिरि सोय। रत्न अरु स्वर्ण उदय गिरि होय।
राजगृह नगरी सु विशाल। वन उपवन मंडित गुणमाल॥ १६॥
राज्य करै श्रेणिक वर भूप। न्याय नीति अति धर्म स्वरूप॥
पटरानी शुभगुण चेलना। सत्य स्वरूप शीलगुण बना॥ २०॥
जैनधर्म में कुशल प्रवीन। गुण सम्यक्त्व सहित अमलीन॥
जिनपूजा वसुविधि नित करै। गुरुसेवा नित चित में धरै॥ २१॥

दान चतुर्विधि नितप्रति देय। गुणिजन को गुणगण गहि लेय ॥
दम्पति* सुख भोगें शुभ नीति। पालें प्रजा अहर्निश* प्रीति २२
नीति राजमारग संचरें । जपतप हित बहुविधि आदरें ॥
नित प्रति पूजा दान विचार। करत हरष हिय में अवधार॥२३॥
दोहा—एक समय पुर निकट नग,* विपुलाचल तसु नाम ।
समवशरण महावीरजिन, आयो सब सुखधाम ॥ २४ ॥

(२) समवशरण निरूपण।

चौपई—योजन एक तनो विस्तार । तीन कोट सोहें सुखकार ॥
दरवाज़े चारोंदिश भले। अति उतंग मनु शिवपुर चले ॥ २५ ॥
दोहा—नृत्यशाल गोपुर* निकट, मन्दिर बने अनूप ।

---

*दम्पति—स्त्रीपुरुष दोनों, पतिपत्नी। अहर्निश—दिनरात। नग—पहाड़ी, (पेड़,वृक्ष)
गोपुर—द्वार, दरवाज़े।

सुरदेवी तहँ आयके, नाचत अधिक स्वरूप ॥ २६ ॥

चौपई—वीथी* सुभग बीच में घनी। तूपादिक* शोभायुत बनी ॥
नरनारी सबजन निरखन्त। भव्यजीव मनमें हर्षन्त ॥ २७ ॥
चैत्यवृक्ष सोहैं अति घने। नग * अशोक बहु सुंदर बने ॥
परिखा भरी अमल जलरास। पुंडरीक* तहं लेहिं हुलास ॥२८॥
षट् ऋतु के फल फूल विशाल। वन उपवन सोहैं गुणमाल ॥
मत्त मधुप *तहँ रुनझुन करें। मानो जिन गुणगण उच्चरें ॥२९॥
चारों दिशा वापिका चार। श्रेणी मणि हाटकमय*सार ॥
सबजनतन शुचि कर सुख पाय। जिन-पूजा जु करें मनलाय॥३०॥

---

* वीथी-गली कूँचे। तूप-स्तूप॥ चैत्य वृक्ष-जिनप्रतिमा युक्तवृक्ष। नग-वृक्ष, पेड़ (पर्वत)। परिखा-खाई। पुंडरीक-श्वेतकमल, कमल मात्र। मधुप-भौंरा। हाटक स्वर्ण।

ध्वजा पवनं कर लहकें सार । भव्य-जीव मनु लेंय पुकार ॥
धूप-कुम्भ धूवां नीकले । मानो पाप सकल उड़ चले ॥३१॥
दोहा—फटिक-कोट के अति निकट, द्वादश सभा निहार ।
रचि धनपति*अति भक्तियुत, हरि-आज्ञा*अवधार ॥३२॥
चौपई—प्रथम सभा मुनि गणधर लसें । नर नरपति दूजे में बसें ॥
कल्प सुवासी देव सुजान । सभा तीसरी में निवसान ॥३३॥
मानुषनी चौथी में सही । और आर्यिका ता में कही ॥
कल्पवासिनी देवी सार । सभा पाँचवीं में निर्द्धार ॥ ३४ ॥
षष्टम सभा ज्योतिषी देव । सप्तम ज्योतिषि-नारि बसेव ॥
अष्टम में व्यंतर सब जान । व्यन्तरनी नवमी मन आन॥३५॥

*धनपति—कुबेर । हरि—इन्द्र ।

दसवीं सभा भवनपति बनी । भवन-तिया एकादश गनी ॥
द्वादशमीमें पशू लसन्त । देखत सब जन मन मोहन्त ॥३६॥

दोहा—तीन तीन चारों दिशा, सकल सभा शोभन्त ।
श्री मंडप तिस मध्य में, वर्णत लहूं न अन्त ॥ ३७ ॥

सखी छन्द—सिंहासन तीन बखाने । शोभा शुभ सुन्दर जाने ॥ भामंडल की द्युति राजे । छवि कोटि दिवाकर लाजे ॥ ३८ ॥ पर्याय सात लख लीजे । जिहिं देखत पातक छीजे ॥ शत इंद्र हर्ष उपजावें । जिन ऊपर चमर ढुरावें ॥३६॥ तहँ छत्र तीन शिर सोहैं । त्रिभुवन देखत मन मोहैं ॥ सुर दुंदुभि नाद बजावें । किन्नर मिल जिन-गुण गावें ॥ ४० ॥ तहँ धर्मचक्र सुविराजे । देखत मिथ्या-तम भाजे ॥

सुरवृक्ष*सुमन सुखदाई । वर्षें अति हर्ष बढ़ाई ॥ ४१ ॥ गंधोदक वृष्टि सुहावै । सब प्राणिन के मन भावै ॥ शुभ मन्द मरुत* हितकारी । परिमल*अति आवत भारी ॥४२॥ इत्यादिक रचना वरनी । भवि प्राणिन भाव सुधरनी॥गुण गावत पार न लहिये । मम बुद्धि अल्प किम कहिये ॥ ४३ ॥

दोहा—अङ्गुल चार प्रमाण है, अन्तरीक्ष जिन-काय ।
शुद्धस्फटिक समान तन, आनन चार लखाय ॥ ४४ ॥
वाणी खिरै अनक्षरी, सप्त-भंग युत सार ।
तीनकाल उपदेश मय, सब जीवन हितकार ॥ ४५ ॥

अडिल्ल छन्द—वनपालक यह देख भयो विस्मित तहाँ ।

*सुर वृक्ष—कल्प वृक्ष । मरुत—पवन, हवा । परिमल—सुगन्ध ।

प्रीति करें सब जीव वैर तज जिन जहां ॥ षट ऋतु के फल फूल सकल जन मन हरें। अपने कर अवधार नृपति आगे धरें ॥ ४६ ॥ शीष नाय कर जोरि भूप सों यों कही। समवशरण महावीर तनों आयो सही ॥ महिमा है अति अधिक कहां लों गाइये। जा प्रसाद तुम नाथ अमरपद पाइये ॥ ४७ ॥

दोहा—वनरक्षक के वचन सुन, भूपति अति हर्षाय ॥
सात पैंड ता दिश धरे, बार बार शिर नाय ॥ ४८ ॥

चौपई—वस्त्राभरण दिये नरराय । वनमाली चाल्यो हर्षाय ॥
आनँद-भेरि नगर में करी। श्रीजिन-भक्ति हृदय में भरी ॥४६॥
राजा रानी पुरके लोग । द्रव्य लिये जिन पूजा योग ॥
विपुलाचल पहुंचे सब लोय। जयजय जयजय की ध्वनि होय॥५०॥

(३) श्रेणिक द्वारा श्री वीरजिन के दर्शन, वन्दन, पूजन और स्तुति।

दोहा—समवशरण में जाय के, वन्दे वीर जिनेश।
अहो नाथ तुम दरस तें, मिटे दुःख अरु क्लेश ॥५१॥
निज तन शुच श्रेणिक कियो, वस्त्राभूषण धार।
जिन-पूजा वसु द्रव्य युत, रची अनूपम सार ॥५२॥
जल चन्दन अक्षत सुमन, नेवज दीप अरु धूप।
फल ले प्रभु आगे धरे, हर्षे श्रेणिक भूप ॥ ५३ ॥
पूजा कर आनन्द सों, लई आरती हाथ।
गुण गर्भित जयमाल शुभ, पढ़त हृदय हर्षात ॥५४॥

पद्धरि छन्द—जय जय जिन तारण तरण धीर। बिन कारण शिव-सुख करण वीर ॥ जय जय जग जीवन सुख

निधान। परमात्म परम ईश्वर महान ॥ ५५ ॥ जय जय जग नायक अति पुनीत। वरनी बहु विधि शुभ धर्म रीत॥ जय जय अनन्त गुण धरन हार। यश गावत इन्द्र न लहत पार ॥५६॥ जय जय कमलानन कुमुद चन्द। मुख देखत नशि हैं कर्म फन्द॥ जय जय प्रभु चिन्तामणि समान। चिंतत दायक शिव सुख निधान॥५७॥ जय जय संसार-समुद्र तार। तुम बिन मैं दुख पायो अपार॥ जय जय करुणा सागर दयाल। मोपै करुणा कीजे कृपाल ॥५८॥ जय जय तुम लोकालोक भास। मिथ्यात्व महातम कियो नास॥ यह विधि स्तुति बहु करी राय। कर जोड़ विनय युत शीष नाय ॥५९॥

दोहा—पुनि गणधर-मुनि नमन कर, बैठ्यो सभा मझार।

जिनवाणी अमृतमयी, सुनै श्रवण सुखकार ॥ ६० ॥

(४) समवशरण में धर्मोपदेश

सोरठा—धर्म्म जगत में सार, सुखकारी सब जीव को।
सागारी अनगार, द्विविधि धर्म बहु विधि कह्यो ॥ ६१ ॥
चौपई—आतम धर्म जगत में सार। सो अनन्त शिवसुख दातार ॥
सात तत्व षट द्रव्य सुजान। श्री जिनवर सब किये बखान ॥६२॥
सम्यग्दर्शन सम्यक् ज्ञान। सम्यक् चारित रत्न निधान ॥
जिनवाणी अमृत रस भरी। भविजन पार उतारन तरी* ॥ ६३ ॥
गुण सम्यक्त्व धर्म की चाल। श्रावत हृदय नशत जग जाल ॥
नय अनेक गुण भेद अपार। गुणस्थान चर्चा अवधार ॥ ६४ ॥

* तरी—नाव

सवैया३१—हिये विच धर्म धार, शिवपद दैन हार, धर्म विन पापी नर, नरक में जायगो। धर्म सेती इन्द्र धरणेन्द्र पद पावत हैं, धर्म सेती दिवस आनन्द में बितायगो ॥ धर्म ही जगत सार, स्वर्ग मुक्ति दैनहार, धरम करत सब करम नशायगो। ऐसी जान चित आन, हिये में विवेक ठान, कीजे क्यों न धर्म ध्यान, पीछे पछतायगो ॥ ६५ ॥

दोहा—समवशरण के मध्य में, होय धर्म्म उपदेश ।
सब जन सुन हर्षित भये, संशय रही न लेश ॥ ६६ ॥

(५) श्रेणिक प्रश्न।

दोहा—धर्मकथा सुनके नृपति, हर्ष हिये न समाय ।
अवसर लख कर जोरि कै, भक्ति सहित शिरनाय॥ ६७ ॥

प्रश्न करै श्रेणिक तबै, सुनो जगतपति वीर ।
तुम सम संशय हरन को, और न कोई धीर ॥ ६८ ॥
वर्तमान चौबीस जिन, तिनकी कथा अनूप ।
श्रवण करन मन चाव अति, कहिये त्रिजगत-भूप ॥ ६९ ॥
भव्य प्रश्न यह तुम कियो, सबजन को सुखदाय ।
प्रथम कथा श्री ऋषभ की, श्रवण करो चित लाय ॥ ७० ॥

अथ मूलकथा निरूपण

(१) श्री ऋषभदेव के दो पूर्वभव* ।

दोहा—श्री गोतम गणधर कहैं, जम्बूद्वीप सुथान ।
ताके पूर्वविदेह में, पुष्कल देश बखान ॥ ७१ ॥

*श्री ऋषभदेव के इन दो पूर्व भवों (जन्मों) से पूर्व के सात भव क्रम से निम्नोल्लिखित हैं:—

चौपई—पुण्डरीक पुर है तहँ सार। वज्रसेन नृप शुभ गुणधार॥
श्रीकान्ता पटरानी जान। शील-शिरोमणि अति गुणवान॥७२॥
सोलहम स्वर्गलोक सों आय। "वज्रनाभि चक्री" सुत थाय॥
वज्रसेन तज राज समाज। वज्रनाभि सुतको दे राज॥७३॥
तप कर केवलज्ञान उपाय। दे उपदेश हुए शिवराय॥
वज्रनाभि चक्री पद धार। साधे छहों खंड सुखकार॥७४॥

---

१. जम्बूद्वीप, पश्चिमी विदेह क्षेत्र, गन्धिला देश, आर्यखंड, विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर-श्रेणी में अलिकापुरी के विद्याधराधिपति महाराजा अतिबल और महारानी मनोहरा का पुत्र "महाबल"।

२. ईशान नामक दूसरे स्वर्ग के श्री प्रभ विमान में "ललितांग देव"।

३. जम्बूद्वीप, पूर्व विदेह क्षेत्र, पुष्कलावती देश, आर्यखंड, उत्पलखेट-नगराधीश वज्रबाहु और रानी वसुन्धरा का पुत्र "वज्रजंघ"।

४. जम्बूद्वीप के उत्तरकुरु की उत्तम भोग भूमि में "भोगभूमिया आर्य मनुष्य।"

५. ईशान स्वर्ग के श्रीप्रभ-विमान में "श्रीधर देव"॥

राज्य कियो चिरकाल नरेश। देखे मस्तक धवल जु केश॥
द्वादश भावन निजमन भाय। अति वैराग्य भयो नरराय॥७५॥

पद्धरिछन्द–संसार असार विचार लीन। दुखदायक करिये मोह चीन॥ निज तात तीर्थपति निकट जाय। लै दीक्षा तप अति कियो राय॥ ७६॥

चौपई–थिति पूरीकर धर सन्यास। सर्वारथसिध कियो निवास॥
सुन श्रेणिक आगे शुभ कथा। आद ऋषभजिन जन्मे यथा॥७७॥

---

६. जम्बूद्वीप, पूर्व-विदेह क्षेत्र, महावत्सा देश, आर्यखण्ड, सुसीमा नगराधीश सुदृष्टि और रानी सुन्दरनन्दा का पुत्र "सुविधि"।

७. अच्युत नामक १६ वें स्वर्ग में "अच्युतेन्द्र"।

इन सात भवों के पश्चात् उपरोक्त दो भव पाकर अर्थात् ८ वें भव "वज्रनाभ" चक्री और ९ वें भव सर्वार्थसिद्धि नामक कल्पातीत विमान में एक "महर्द्धिक देव" होकर और वहाँ की ३३ सागरोपम काल की आयु पूरी करके १० वें भव नाभिराय के पुत्र "श्री ऋषभदेव" तीर्थंकर हुए।

(२) काल विभाग निरूपण।

दोहा—ज्योतिष-चक्र प्रमाण सों, काल-चक्र की चाल ।
ऐरावत अरु भरत में, रहट-घड़ी जिम माल ॥ ७८ ॥

चौपई—यह जो भरत क्षेत्र अभिराम । कालदोय विधि वर्णूं नाम ॥
प्रथमकाल अवसर्पिणि जान। उत्सर्पिणी द्वितिय को मान ॥७९॥
दश कोड़ा-कोड़ी थिति*कही । इतनी ही दूजे की सही ॥
वर्तें अब अवसर्पिणी काल । ताहूमें षट भाग सम्हाल ॥८०॥
पहिला सुषमा-सुषमा जान । कोड़ा-कोड़ी चतुनद*मान ॥
मानव तीन कोश तन धरें । तीन पल्य की थिति*अनुसरें॥८१॥
तीन दिवश अन्तर दे सार। बद्री-फल*सम करें अहार ॥

*दश कोड़ाकोड़ी थिति–दश करोड़ की करोड़ गुणी स्थिति अर्थात् एक १.स साग-रोपम काल प्रमाण स्थिति। नद–सागर। चतु नद चार सागरोपम काल। थिति स्थिति, आयु॥ बद्रीफल–बदरिफल, बेर॥

रोग शोक व्यापै नहिं कदा। सरल स्वभावी सब जन सदा ॥८२॥
सुरपादपु*दश विधि के जहां। घर २ सब सुख भोगें तहां ॥
सुख में काल व्यतीते सोय। पुण्य पाप नहिं जाने कोय ॥८३॥
आयु अन्त सुत कन्या जनैं। दिन उनचास तरुणता भनैं ॥
ते दोऊ नारी भरतार। भोग भोगवें सुख भंडार ॥ ८४ ॥
छींक जम्हाई सों तनु तजैं। प्राण त्याग सुर-सुख को भजैं ॥
तन कपूर सम तब खिर जाय। चिन्ता दुख कोई न कराय ।८५।

दोहा-प्रथम काल की रीति यह, सुन श्रेणिक मन लाय ॥
अब आगे वर्णन सुनो, ज्यों संशय मिट जाय ॥ ८६ ॥

चौपई-काल दूसरो सुषमा जान। कोड़ाकोड़ि जलधित्रय*मान॥

*सुरपादपु-कल्प-वृक्ष ॥ जलधि त्रय तीन सागर। कोड़ाकोड़ि जलधि त्रय-तीन कोड़ाकोड़ी सागरोपम काल।

दोय कोस की ऊँची काय । युगल पल्य तहँ आयु बताय ॥८७॥
दोय दिवश अन्तर आहार । लेहिं विभीतक*सम शुचिसार ॥
अन्य रीति पूरब जो कही । ता समान जानों नृप सही ॥८८॥
दोहा—सुषमा दुषमा नाम का, काल तीसरा राय ॥
दो कोड़ाकोड़ी जलधि, थिति ताकी ठहराय ॥ ८९ ॥
चौपई-एक कोस ऊँचा तन धरें । पल्य*एक की थिति अनुसरें ॥
अशन आमले के सम लेंय । अन्तर एक दिवश का देंय ॥ ९० ॥

*विभीतक-बहेड़ा ॥

(१) कल्प वृक्षों के भेद १०—तूर्यांङ्ग, पात्रांग, भूषणांग, पानांग, आहारांग, पुष्पांग, ज्योतिरांग, गृहांग, वस्त्रांग, दीपाँग ॥

(२) ४१३४५२६,३०३०८२०३१७,७७४९५१२१९२,००००७००००,०००००००००० (२७ अङ्क और २० शून्य) वर्षों का एक व्यवहार पल्य या पल्योपम काल होता है । और १० कोड़ा कोड़ी अर्थात् १० करोड़ के करोड़ गुणे (१ पद्म) पल्योपम काल का एक सागरोपम काल होता है ॥

और रीति सब पूर्व समान। युगलि-धर्म इस विधि पहचान ॥
अन्तिम भाग माहिं इसकाल। कुलकर चौदह हैं गुणमाल ॥६१॥

(३) १४ कुलकर कथन

अडिल्ल—पल्य आठवें भाग काल थिति जब रहै। क्रम से कुलकर जन्में जिनवाणी कहै ॥ मति श्रुत अवधि समेत ज्ञानधारी सबै। जो संशय उपजात हरैं सब की तबै ॥ ६२ ॥

सवैया ३१—प्रतिश्रुत प्रथम द्वितीय सन्मति नाम, क्षेमंकर क्षेमंधर सीमंकर मानिये। सीमन्धर विपुलान चक्षुष्मान आठमों है, नवमों यशस्वी अभिचन्द्र दशों जानिये ॥ चन्द्राभ ग्यारमों है मरुदेव बारमों है, तेरमों प्रसेनजित मनुज प्रमानिये। चौदमों है नाभिराय मनुज प्रसिद्ध भयो,हा मा धिक्

दंड नीति निगम*बखानिये ॥ ६३ ॥

दोहा—नाभिराय की आयु-थिति, कोटि पूर्व*परिमान ॥

सवा पाँच सौ धनुष*की, काया ऊँची जान ॥ ६४ ॥

मरुदेवी वनिता सहित, भोगें भोग महन्त ।

जिन उरु जिनवर अवतरे, वर्णत लहैं न अन्त ॥ ६५ ॥

(४) श्री ऋषभदेव का गर्भ-मंगल

सोरठा—ऋषभदेव अवतार, नाभिराय घर होयसी ।

इन्द्र अवधि अवधार, धनपति को आज्ञा दयी ॥६

दोहा—नगर विनीता*तुम रचौ, श्री जिनपति के योग ।

---

*निगम—आगम, शास्त्र । पूर्व—८४ लाख पूर्वाङ्ग का, या ८४ लाख के ८४ लाख गुणे अर्थात् ७०५६०००००००००० वर्षों का एक पूर्वकाल होता है । धनुष—४ हाथ या दो गज़ । विनीता—अयोध्यापुरी ।

पंचाश्चर्य*करो तहां, सुखी होयँ सब लोग ॥ ९७ ॥

चौपई—हरि आज्ञा धनपति शिरधार । नव द्वादश योजन विस्तार॥
नगरी सुभग रची मणिमयी । सुरपुर सम सुन्दर निरमयी॥९८॥
सुर षट मास अगाऊ जहाँ । रत्नादिक वर्षावें तहाँ ॥
छप्पन कुमारी देवी आय । जिन जननी सेवें मनलाय ॥ ९९ ॥
वदि आषाढ़ दूज दिन आय । गर्भ माहिं आये जिनराय ॥
याम यामिनी*इक अवशेष । माता सोलह स्वपने देख॥ १०० ॥

दोहा—जो सर्वारथसिद्धि में, वज्र नाभि चर*सयो ॥

---

*पंचाश्चर्य—५ चमत्कृत कार्य, अर्थात रत्नवृष्टि, सुगन्धित पुष्प वृष्टि, सुगन्धित जल-कण वृष्टि, मन्द सुगन्धित पवन-संचार, देव-दुन्दुभि शब्द (किसी २ ऋद्धि-धारी मुनि के निरन्तराय आहार के पश्चात् रत्न वृष्टि अथवा जयजयकार ध्वनि) ॥
याम—पहर । यामिनी—रात । चर—जीव ।

आयु पूर्ण कर च्युत भयो। मरुदेवी उरु पोय*॥ १०१ ॥

सवैया ३१ (सोलह स्वप्न)—स्वेतसुर-कुंजर, वृषभ स्वेत गाजत है, पंचानन*सुँदर, रमा*विराजमान हैं। सुमन सुदाम*जुग, सोम रवि मीन युग, युगल कलश सर जलधि प्रमान है॥ सिंह-पीठ देवयान फनिंद्र-आवास मान, उद्योत प्रकाश राशि, रत्न सुख-खान है। धूम्रशिन पावक, जिनेश गुण सूचक है; षोडश स्वपन मजनात सुखदान है॥ १०२ ॥

दोहा—ये स्वप्ने जिनमात लख, सब जीवन सुखकार।
तूर्य-नाद सुन प्रात लख, निद्रा कर परिहार ॥१०३॥

*पोय-प्रवेश किया। पंचानन-सिंह। रमा-लक्ष्मी। सुदाम-सु+दाम, सुन्दर माला। सुमन-फूल, पुष्प।

चौपई—वपु*शुचिकर अति मन हर्षाय। वस्त्राभरण शृङ्गार बनाय ॥
सखी सङ्ग ले गमन जु कियो। देख नाभि नृप आदर दियो १०४
अर्द्धासन दे पूछै राय। आगम कारण कहु सुखदाय ॥
षोड़श स्वप्न अन्त निश जाम। देखे फल कहिये सुखधाम ॥१०५॥

सवैया ३१ (१६ स्वप्न फल)—गज तें महन्त नन्द, वृषभ तें राजवाह, केहरि तें महाबलि, रमा लच्छिवान जू। तीर्थ करतार जोल, शशि तें शरमकार, रवि ते अज्ञानहार, मीन सुख दान जू॥ कुम्भतें निधानवन्त, सर तें सुचिन्हकन्त, सागर ते ज्ञान वन्त, पीठ*लोकमान जू। भोगी सुरयान सेती, भौनगेह ज्ञान तीन, मणि तें सुगुणाधार, वन्हि*कर्महान जू ॥ १०६ ॥

*वपु-शरीर। पीठ-सिंहपीठ, सिंहासन। वन्हि-अग्नि।

चौपई—अवधिज्ञान सों जान्यो राय। जिन अवतार होयि सुखदाय॥
यह विचार दम्पति सुखसार। को कवि वरन सके मनधार॥१०७॥
तिहिं अवसर सुरलोक मझार। घंटा शब्द भयो अनिवार॥
ज्योतिष-लोक नाद-हरि* होय। बाजें भेरी व्यन्तर-लोय॥१०८॥
भवनवासि ध्वनि शंख अपार। स्वयं नाद नादति अधिकार॥
नम्रीभूत मुकट सुर होय। सिंहपीठ* कँप अचरज जोय॥१०९॥
सौधर्मेन्द्र अवधि अवधार। जान्यो आदि-गर्भ अवतार॥
अति आनन्दित चतुर-निकाय* देव चले पूजा चितलाय॥११०॥
आय नाभिगृह मन हर्षाय। दम्पति पूजे अति मन लाय॥

*नादहरि-हरिनाद सिंहनाद, तुरही। सिंहपीठ-सिंहासन। चतुर निकाय-चार समूह, अर्थात् भवनवासी, व्यंतर ज्योतिषी और कल्पवासी (स्वर्गवासी) देवों के

कर अभिषेक गर्भ-कल्यान । भूषण वस्त्र पूजि तिहिं थान॥१११॥
इस्तुति कर चरणन शिर नयो । अपनो जनम सफल कर लयो ॥
सुरवनिता हरि आज्ञा पाय । जिन जननी सेवें सुखदाय ॥११२॥

दोहा—इन्द्र गयो सुरपुर तबै, दम्पति बहु हर्षाय ।
गीत नृत्य आनन्द युत, इहि विधि काल विहाय ॥११३॥
नन्द*मास पूरण भये, जन्म समय हरि आय ।
बहु सुरयुत आनन्द उर, जन्मोत्सव चित लाय ॥११४॥
मधुऋतु*मधु*अलि-पक्ष*में, नन्द*सुतिथि सुखकार ।
ऋक्ष*उत्तराषाढ़ शुभ, ऋषभदेव अवतार ॥ ११५ ॥

*नन्द–नव । मधु ऋतु–वसन्त ऋतु । मधु–चैत्र मास । अलि-पक्ष–कृष्ण पक्ष । नन्द–नवमी । ऋक्ष–नक्षत्र ।

चौपई–हरि ऐरावत*शोभा करी । श्रीजिन भक्ति हिये में भरी ॥
योजन‡एक लक्ष परिमान । शुभ उतंग काया अमलान ॥११६॥
वदन*एक शत,रद*वसु सार । प्रति रद सर उज्वल जलधार ॥
सर २ प्रति कमलनि शोभंत । शत अरु पचविंशति राजंत ॥११७॥
कमलनि प्रति पंकज शुभ सार । सरभुज मित*सोहैं मनहार ॥
प्रति पंकज दल वसुशत*लसें । मनु जिनजन्मोत्सव सुन हँसें ११८
नृत्य करें शुभ साज समेत । सुर देवी जिनमंगल हेत ॥
ता गज चढ़ हरि युत परिवार । नगर विनीता गमन विचार ।११९।
सकल सुरासुर जय जय करैं । नंदिवृद्धि मुखतें उच्चरें ॥

*ऐरावत–इन्द्र की सवारी का हाथी । वदन–मुख । रद–दन्त । सर–५, भुज–२, मित–परिमाण, सरभुज–२५ ॥ दल–पत्र । वसुशत–१०८ ।

शची शचीपति आज्ञा पाय। जिन प्रसूति-गृह पहुंची जाय ।१२०।
जिन-दर्शन कर हर्षी अङ्ग। जिन जननी देखी जिन सङ्ग ॥
इस्तुति कर सुखनिद्रा रची। मायामय थाप्यो शिशु शची ।१२१।
तीन लोक-पति जिन कर लेय। आय शची पति के कर देय ॥
युग दृग देख रूप जिनराय। तृप्ति न होय हर्ष अधिकाय ।१२२।
तब लोचन दशशत परिमान। कर देखत जिन रूप निधान ॥
गज चढ़ाय सुरगिरि* ले गये। सब सुर देख आनन्दित भये।१२३।
कर कर कर कलश सुर ल्याय। चीरोदक*वसुसहस्र*भराय ॥
करले कलश लसै सुर भूप। भाजनांग-सुरतरु के रूप ॥१२४॥
पांडुक शिला थाप जिन-ईश। ढारै कलश लोकपति शीष ॥

*सुरगिरि–मेरु पर्वत। क्षीरोदक–क्षीरोदधि नामक पंचम समुद्र का जल। वसु-सहस्र–१००८।

सूक्ष्म वस्त्र ले शची उठाय। निर्जल तन कीनो जिनराय ॥ १२५ ॥
कुंडलादि आभूषण सार। अंजन तिलक कियो शृङ्गार ॥
ले वसु द्रव्य पूज तिन करी। सफल जन्म मान्यो तिहिं घरी॥१२६।
चौथे काल आदि-अवतार। आदिनाथ संज्ञा निर्द्धार ॥
सुर कुंजर श्रीजिन बैठाय। जिन-माता-कर दीन्हे आय॥ १२७ ॥
तांडव नृत्य कियो सुर-भूप। जिन मुख देखै अधिक सुरूप ॥
सुर सुरपति राखे प्रभु पास। क्रीड़ा निमित महा गुणरास॥१२८॥
गयो पाकशासन*निज थान। नाभिराय पुत्रोत्सव ठान ॥
दान दियो याचक जन जबै। जय जय कार भयो पुर तबै।१२९।
दोहा—पिता देख निज तनुज को, हर्ष हिये न समाय।

*पाकशासन—इन्द्र।

सहस एक वसु अधिक शुभ, लक्षण तन शोभाय ॥१३०॥
नाना वेष वनाय सुर, जिन-मन अति हर्षाय ।
वर्द्धित तन जिम शशि-कला, भुवन तीन सुखदाय ॥ १३१ ॥

(६) विवाह संस्कार और राज्य शासन।

दोहा—दश अतिशय*जिन-जन्म तें, मति श्रुत अवधि सुज्ञान ॥
क्षायिक समकित भाव उर, धर्म ध्यान हिय आन ॥१३२॥
चौपई—पूर्व द्विगुण दश लक्ष वखान। बाल केल बीते सुखदान॥

* दश अतिशय—१० असाधारण बातें अर्थात् अति सुंदर शरीर, अत्यन्त सुगन्धित शरीर, पसेव रहित शरीर, मल मूत्र रहित शरीर, हित मित प्रिय वचन, अतुल बल, दुग्ध वर्ण श्वेत रुधिर, शरीर में १००८ शुभ लक्षण, समचतुरस्र संस्थान, और वज्र वृषभ-नाराच-संहनन ॥

नोट—श्रीऋषभदेव (श्री आदिनाथ) मंडलेश्वर राजा थे। इनके शरीर का वर्ण ताये सुवर्ण समान मनोज्ञ ५०० धनुष ऊँचा था।

यौवन तन मंडित जिनराय। सुरपति देख अवधि मनलाय १३३
कच्छ और महा कच्छ नरेश। कन्या योग्य विवाहि जिनेश॥
यशस्वतीय सुनन्दा नाम। मघवा*ल्यायो सब गुणधाम ॥१३४॥
शुभ मुहूर्त्त ग्रह दिन तिथि घरी। पाणिग्रहण कर्‌यो जिन हरी॥
नाभिराय मरुदेवी मात। उत्सव देख अधिक हर्षात॥ १३५॥
राजअभिषेक कियो जिनराय। सुरपति सुरपुर गमन कराय॥
नगर अयोध्या सब जन सुखी। ईति भीति नहीं कोई दुखी।१३६।

दोहा—सुर-तरु नष्ट भये सबै, प्रजा भई दुख लीन।
नाभिराय पै आयकै, कहे बैन सुखदीन॥ १३७॥
प्रजा संग ले नाभिनृप, आये श्रीजिन पास।

* मघवा—इन्द्र।

यथायोग्य वच उच्चरे, पूरो इनकी आस ॥१३८॥

चौपई—दुखी देख पुरजन जिनराय। यत्न इक्षु रस दियो वताय॥
वंश इक्ष्वाकु कहें पुर-लोग। क्षुधा मिटावें रस संयोग ॥१३९॥
केतेक दिन वीते इस रूप। सुखी नगरजन किये जगभूप॥
राज-नीति मारग संचरें। सव जन हिय संशय प्रभु हरें॥१४०॥

दोहा—काल दोष अति क्षुधित नर, पुनि आये जिन तीर।
*असि मसि कृषि उपदेश दे, हरी सकल जन पीर ॥१४१॥
यशस्वती नारी उदर, जन्मे शत सुत आय।

---

*असि-खड्ग, खांडा तलवार। मसि-स्याही। कृषि-खेती।

नोट—श्री ऋषभदेव ने आवश्यकतानुसार क्षत्री, वैश्य, और शूद्र ये तीन वर्ण स्थापन किये जिनको आजीविकार्थ असि मसि, कृषि वाणिज्य शिल्प और सेवा ये षट् कर्म नियत करके उन्हें यथायोग्य विधि आदि वताई।

भरतादिक, ब्राह्मी सुता, सब जन को सुखदाय ॥ १४२ ॥
नाम सुनन्दा दूसरी, महिला बहुगुण धाम ।
कामदेव बाहूबली, तनया सुन्दरि नाम ॥ १४३ ॥
युग कन्या इक अधिक शत, शीलवान सुकुमार ।
तीन अधिक शत सन्तती, जानो निगम*विचार ॥ १४४ ॥
चौपई—एक समय जिनवरमनलाय। सुत कन्या निज निकटबुलाय।
युगशर*वर्ण बताए जबै। भरतादिक सुत सीखे तबै ॥ १४५ ॥

---

* युग—२, शर—५, युगशर—५२।
निगम—वेद, शास्त्र ॥

नोट १—आजकल की हिंदी वर्णमाला में ५२ अक्षर हैं। परन्तु पुरानी प्राकृत भाषा लिपि में जो न केवल भारतवर्ष की किन्तु पृथ्वी भर की सर्व भाषाओं की मूल है ६४ अक्षर हैं जो वर्तमान कल्पकाल में सब से प्रथम श्री ऋषभ देव ने अपनी बड़ी

अंक लिखे ज्योतिष गत सार। ब्राह्मी सुन्दरि निज मनधार॥
इस प्रकार भाषी सब रीति। पूर्व लाख ऋासी*सु व्यतीति।१४६।

(७) त्याग और तप

दोहा—प्रभु सुख सागर में मगन, देख इन्द्र चित चिन्त।
शेष आयु लख पूर्व की, त्याग योग्य निश्चिन्त॥ १४७॥

सवैया—नीलंयशा नाम एक, देवी मघवा पठाय, आयु जाकी अन्तर-मुहूरत प्रमानिये। गावत सुकंठ गीत, नाचत संगीत ताल, बाजत मृदंग बीन, बांसुरी बखानिये॥ नटति नटति

पुत्री ब्राह्मी को सिखाई। इसीलिये उस पुरानी लिपी का नाम "ब्राह्मी लिपि" आज तक प्रसिद्ध हैं॥

नोट २-तीर्थंकरों के पुत्रियों का जन्म नहीं होता परंतु हुंडावसर्पिणी कालदोष से श्री ऋषभ देव के दो पुत्रियां जन्मीं॥

* आसी—बीसलाख पूर्व बाल्यकाल और ६३ लाख पूर्व राज्यकाल॥

आयु, पूरी खिर गई देह, देख जिननाथ जग, नाशवान जानिये ।
राज काज त्याग कीजे, आत्मीक-रस पीजे, छीजे दुख लीजे
सुख, मोह कर्म्म भानिये ॥ १४८ ॥
सोरठा—यह विचार जिनराय, भरत बुलायो निज निकट ।
राज्य देय समुझाय, प्रजा नीतियुत पालियो ॥ १४९ ॥
पोदनपुर*को राज, बाहुबली को सौंपियो ।
सब सुत राज समाज, दे द्वादश भावन भजें ॥ १५० ॥
सुर लौकान्तिक आय, यथा योग्य अस्तुति करी ।
अहो जगतपति राय, तुम विचार बहु शुभ कियो ॥ १५१ ॥
सवैया ३१—तुम जगदीश ईश, शिवतिय रमनीश, तुम

* पोदनपुर—आज कल के अरब देश का मक्का नगर प्राचीन समय का पोदनपुर है ॥

बिन धरम प्रगट कौन करिहैं। ध्यानरूप अग्नि में, कर्मगण दाहक हो, चाहक हो आतम, अमलरस भरि हैं ॥ तुम बिन नाथ शिवधाम नहिं पाय सकें, तुम बिन सेवा दुख कैसेहू न टरिहैं। धन्य प्रभु शिव-पन्थ साधन जगत जन, देहुगे दिखाय सेय भवोदधि तरि हैं ॥ १५२ ॥

दोहा—करि अस्तुति निज थान को, लौकान्तिक सुर जाय।
मघवा शिविका*ल्याय कर, बैठारे जिनराय ॥ १५३ ॥
राजादिक सुर शक्र*मिल, मग प्रयाग-वन लीन।

---

* शिविका—पालकी (सुदर्शना नामक पालकी)। शक्र—इन्द्र।

नोट—श्री ऋषभदेव ने प्रयाग (इलाहाबाद) के सिद्धार्थ नामक वन में न्यग्रोध, अर्थात् वट या बरगद वृक्ष के नीचे जन्म तिथि व नक्षत्र के अर्थात चैत्र कृ०६, उत्तरापाढ़ (अभिजित) नक्षत्र के अपरान्ह काल (सायंकाल) में दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण की।

वस्त्राभूषण जिन तजे, मोह-पाश करि छीन ॥ १५४ ॥

चौपई—ॐ नमः सिद्धेभ्य उचार । पंच मुष्टि कचलोच*उतार ॥

तप कल्याणक सुरपति कियो। दुन्दुभि नाद गगन बाजियो॥१५५

निज निज थानक सब जन गये। आत्मलीन श्री जिनपति भये॥

चार सहस राजातिन संग। धरि दीक्षा कीनो तप भंग ॥१५६॥

सोरठा—ऋतुमित*मास विचार, व्रत जगपति धारण कियो ॥

कायोत्सर्ग निहार, तन मन मेरु समान हैं ॥ १५७ ॥

चौपई--व्रत षट मास जु पूरण भयो। लैन अहार गमन चित दयो॥

राजा प्रजा देख जग ईश। भक्ति भाव युत नायो शीश ॥१५८॥

अडिल्ल—हय गय*रथ आभूषण अम्बर ल्यायकै ।

---

* कच—वाल'। लोच--उपाड़ना । ऋतु--६, ऋतुमित मास--६ मास प्रमाण। हय-घोड़ा। गय-हाथी ।

तनुजा आदिक भेंट धरें सुख पायके ॥ अन्तराय को उदय जान प्रभु वन गये । इम षट मास प्रमाण ध्यानयुत पुनि भये ॥ १५६ ॥

दोहा--वर्ष एक पूरण भये, निराहार जिनराय ।
न्याद*हेतु गजपुर*चले तन कारण थिर काय ॥ १६० ॥

सवैया ३१—गजपुर नगर नृपति सोमप्रभ-भ्रात श्रेयांश स्वपन वसु, वाहीनिशा देखिए । कल्प-वृक्ष मेरुगिरि, पंचानन धेनुसुत रवि सोम उदधि, गयन्द शुभ पेखिए ॥ प्रात उठ भ्रात सेती, पूछै फल कहै तसु,पुण्यवान आवें गेह,देवतरु लेखिए। धीर बलवान धर्मज्ञगुणनापधारी, शान्त गम्भीर अतिमहत विशेषिए ॥१६१॥

* न्याद—आहार । गजपुर—हस्तिनापुर ।

दोहा—सुन फन मन हर्षित भयो, श्री श्रेयांश सुराय ।
सौध-स्थित*अवलोकते, श्रीजिन दर्शन पाय ॥ १६२ ॥

सखी छन्द--मुनि रूप जिनेश्वर देखे। जिन जन्म सफल कर लेखे॥
भव-सुमिरन-ज्ञान प्रकास्यो। पर्याय भवान्तर भास्यो ॥१६३
इह वज्र जंघ-चर सोई । रानी मैं श्रीमती होई ॥
तहँ शष्प* सरोवर तीरे। मुनि चारण पोषे धीरे ॥१६४॥
जिहिं पुण्य महा उपजन्ते। यह आदि मुनी शोभन्ते ॥
मैं नारि-लिंग निर्वारयो! श्रेयांश राय पद धारयो ॥१६५॥

दोहा--मुनि अहार-विधि जानके, श्रीजिन सन्मुख जाय ।
कहै भक्तियुत नाय शिर, तिष्ठ तिष्ठ जिनराय ॥१६६॥

---

* सौध- राज सदन। सौधस्थित-राज-महल में बैठे हुए। शष्प-नया तृण, धान्य, सरोवर का नाम।

सोरठा (मरवद्ध)-जगजीवन हितकार, जगजीवन सबसुख करयो।
जगजीवन सुविचार, जगजीवन विधि तारिये ॥ १६७ ॥
चौपई--नवधा भक्ति* हिये में धार। सप्त सुगुण*युत है दातार॥
इक्षु सुरस आहार कराय। सार्द्धद्वय*अंजुलि जिनराय ॥१६८॥
दोहा—अक्षय निधि दातार-घर, अशन अन्त जिनराय।
ईर्यापथ शोधत चले, योगधरयो बन जाय ॥१६९॥
चौपई—पंचाश्चर्य किये सुर सार। पुण्य महातम जग विस्तार॥

*नवधा भक्ति—नव प्रकार से सेवा और परम अनुरक्ति (प्रतिग्रह या पड़गाहन, उच्चस्थान प्रदान, चरण प्रक्षालन पूजन, साष्टांग नमस्कार, मनः शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, अशन पान शुद्धि। (अथवा श्रवण, कीर्तन, स्मरण, अर्चन, वन्दन, आत्म निवेदन, सख्य, दास्य और पादसेवन।) ॥ सप्त गुण—श्रद्धा, भक्ति, शक्ति, विवेक, अलुब्धता, सहनशीलता, दानानुराग अथवा निरपेक्षता, सहनशीलता, निष्कपटता, अनीर्षा, निरभिमानता, अखेदता और हर्ष ॥ सार्द्धद्वय—अर्द्ध सहित दो, अढ़ाई ढाई ॥

साढ़े तीन कोड़ि परिमान। रतनवृष्टि नृपसदन बखान ॥१७०॥
नगर नगर देखी यह रीति। दान विषय मन धरि अति प्रीति ॥
सुन नृप भरत हरष मन लाय। श्रेयांश गृह गमन कराय ॥१७१॥
धन्य राय पुण्यातम सार। श्रीजिन तुम गृह लियो अहार ॥
कर अस्तुति सन्मानित कियो। आय नगर निज दान सुदियो॥१७२

दोहा—इस प्रकार आहार कर, श्रीजिन ध्यान लगाय।
सहस वर्ष छद्मस्थ*युत, तप तपियो जिनराय ॥ १७३ ॥
धर्म्म ध्यान संयोग तें, प्रकृति सप्त*क्षय जाय।

---

* छद्मस्थ—सर्वज्ञ पद प्राप्ति से पूर्व की अवस्था में स्थित, असर्वज्ञ।

प्रकृति सप्त—अनन्तानुबन्धी चतुष्क (क्रोध, मान, माया, लोभ) और दर्शनमोह-त्रय (सम्यक्त्वमोहिनी, मिथ्यात्व मोहिनी, सम्यक्त्व मिथ्यात्व या मिश्र मोहिनी।) श्री ऋषभदेव इन सप्त प्रकृतियों को दो जन्म पूर्व ही क्षय कर चुके थे॥

तप बल तेज प्रताप सौं, अष्ट ऋद्धि*सब पाय ॥ १७४ ॥
अप्रमत्त गुणथान चढ़, करण तीन कर सार ।
क्षपक श्रेणि आरूढ़ है, प्रकृति छतीस निवार ॥ १७५ ॥
अडिल्ल—क्षपक श्रेणि आरूढ़ ध्यान अविचल ठयो ।
धर्मध्यान के भेद विभेदन चित दयो ॥ शुक्ल ध्यान पृथक्त्व-
वितर्क-वीचारियो। द्वितीय एकत्व-वितर्कविचार सु मन कियो ।१७६
चौपई—चढ़ दशवें गुण थानक सार। लोभ संज्वलन कर परिहार॥
शुक्ल ध्यान पद दूजे जाय । सोलह प्रकृति हनी जिनराय।१७७।
दोहा—कर्म घातिया प्रकृति युत, त्रेसठ सब मिल हाय ।

---

*अष्ट ऋद्धि—बुद्धि, क्रिया, विक्रिया, तप, बल, औषधि, रस, और क्षेत्र; इन के कृमसे २५, २, ११, ७, ३, ८, ६, २ भेद अथवा १८, ६, ११, ७, ३, ८, ६, २, भेद, एवं सर्व ६४ भेद हैं ।

सो प्रभु नाशीं छाणक में, निर्मल आतम जोय ॥ १७८ ॥

(८) केवल ज्ञान या सर्वज्ञ पद

अडिल्ल—गुणस्थान त्रोदशम सयोगी पद लह्यो । शुद्धातम सु अनन्त चतुष्टय*गुण गह्यो ॥ देख चराचर लोक सार सुखमय भये । अष्टादश*जे दोष दूर सब ह्वैगये ॥ १७९ ॥

दोहा—केवल ज्ञान प्रभाव सों, शत हरि* आय नमन्त ।
तिन जिनपति गुण कहन को, को कवि ज्ञान धरन्त ॥१८०॥
हरि आयुश पाके धनद, समवशरण मन लाय ।
द्वादश योजन भूमि रच, मन-वच-तन हर्षाय ॥ १८१ ॥

---

* अनन्त चतुष्टय—चार अनन्त शक्तियां, अर्थात् अ.ज्ञान, अ.दर्शन अ.सुख, अ.वीर्य ॥ अष्टादश दोष —जन्म, जरा मरण; रोग, शोक, भय; क्षुधा, तृषा, निद्रा; राग, द्वेष, मोह; स्वेद, खेद, विस्मय; मद, अरति, चिंता ॥ शत हरी—१०० इंद्र व प्रतीन्द्र, अर्थात् भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, कल्पवासी (ये ४ प्रकार के देव), मनुष्य और तिर्यंच इन के क्रम से ४०, ३२, २, २४, १, १, एवं १०० इन्द्र और प्रतीन्द्र हैं ॥

चौपई—कोट तीन रत्न गोपुर चार । वन उपवन शोभा विस्तार ॥
नाट्यशाल सुरदेवी नटें। जिन गुण गान करत अघ कटें॥१८२॥
चैत्यवृक्ष सोहें शुभ रूप । अति उतंग राजत हैं तूप ॥
चारों कोन वापिका चार। अमल सलिल* अमृतमय सार ।१८३।
मानस्तम्भ मान को हरै। देख अशोक शोक सब टरै ॥
सुर तरु मन वांछित फल देइँ। सर पंकजयुत शोभ धरेइँ ॥१८४॥
पुष्प-पराग* मधुप*तहँ लेयँ। श्रीजन-गुण मुख गान करेयँ ॥
चहूं कोन घट धूप सुवास । परिमलता* अति करै प्रकाश ॥१८५॥
परिखा* सोहें बलयाकार* । पंकजयुत निर्मल जल सार ॥
सहस एक अस्सी अधिकौन । केतु प्रत्येक दिशा परिमान।१८६।

---

* सलिल—जल । पराग—पुष्परेणु । मधुप—भौंरा । परिमलता—सुगन्धि । बलयाकार—कड़े के आकार गोल ॥ परिखा—खाई ॥

सहस चार चहुं दिश शोभन्त । शतत्रय बीस अधिक लहरंत ॥
मंद पवन हिलकोरें केतु । मनु बोलहिं जन पूजन हेतु ॥१८७॥
दोहा--इत्यादिक शोभा तहां, और अनेक प्रकार ।
वर्णन शक्र न करसकै, अल्प ज्ञान आधार ॥ १८८ ॥
चौपई--श्रीमंडप तिहिं मध्य प्रदेश । जहां विराजें श्री लोकेश ॥
द्वादश सभा*सुशोभित जहां। सुर नर पशु बहु निवसें तहां॥१८९॥
चौरासी गणधर परिमान । वृषभसेन आदिक गुणखान ॥
धर्मचक्र सोहै सुखकार । जगजन जगत उतारै पार ॥ १९०॥
दुन्दुभि आदि वाद्य बाजन्त । आठ प्रातिहारज*राजंत ॥

द्वादश सभा--ऊपर देखो पृ० ९, १०, पद्य न० ३३ से ३७ तक ॥ अष्ट प्रातिहार्य--अशोक तरु, रत्नसिंहासन, छत्रत्रय, प्रभामंडल, दिव्य ध्वनि, दिव्य पुष्पवर्षा, यक्षदेवों द्वारा ६४ चमरों का ढुलना, देवदुन्दुभि शब्द ॥

चार अनन्त चतुष्टय लसैं। निज आतम-गुण माहीं वसैं ॥१६१॥
देवोकृत अतिशय दश चार । दश केवल दश जन्महिं लार ॥
चौंबीसों अतिशययुत देव। गुण छयालीस लसैं स्वयमेव ।१६२।
वर्णन करत ग्रन्थ बढ़ जाय । जिन गुण जिनवर पै वर्णाय ॥
समवशरण हरि-धनद रचाय । जिन शोभितशोभा अधिकाय१६३

दोहा—वाणी खिरै अनक्षारी, भाषा विविधि सुनाय ।
तीन काल शुचि ज्ञानमय, श्रवण सुनत सुखदाय ॥ १६४ ॥

(४) भरत द्वारा भगवान ऋषभ की वन्दना, पुत्र जन्मोत्सव,
षट्खंड साधन, और बाहुबली का वैराग्य ।

दोहा—फागुन असित इकादशी, पहिले पहर सुरेश ।
केवल कल्याणक कियो, सुन्यो राय भरतेश ॥ १६५ ॥

चौपई—तीन पुरुष नृप के ढिग आय । करें वीनती शीश नवाय ॥

तात तुम्हारे केवल ज्ञान । उपज्यो है सब जन सुखदान ॥१९६॥
द्वितिय पुरुष विनवै सुविचार । चक्र रत्न उपज्यो सुखकार ॥
पुरुष तीसरो इम वच चयो । तुम सब सुखदायक सुत भयो१९७

दोहा—वच तीनों के नृपति सुन, निज मन माहिं विचार ॥
धर्म्म कार्य कीजे प्रथम, जो सब सुख आधार ॥ १९८ ॥

चौपई—जाय राय जिनपूजा करी। भक्ति सहित अस्तुति विस्तरी ॥
सुन धर्म्मोपदेश मन लाय । नमस्कार कर निज पुर आय ।१९९।
कर पुत्रोत्सव हर्ष अपार । चक्र-रत्न पूजा विस्तार ॥
साधन कर षट खंड प्रमान । वृषभाचल नामांकित थान ॥२००।
नव निधि चौदह रत्न विशाल । बहुत ऋद्धि युत है भूपाल ॥
आयो नगर जबे भरतेश । चक्र रत्न नहिं करै प्रवेश ॥ २०१ ॥
विशश्र नाम प्रोहित बुलवाय । चक्र रुकन की बात सुनाय ॥

प्रोहित कहै चक्रपति सुनो । चक्ररत्न गुण हिय में गुनो ॥२०२॥
छहों खंड में जितने ईश । चक्ररत्न को नावें शीश ॥
नृप एको आज्ञाबिन जान । चक्र नजाय नगर यह मान ॥२०३॥
भरत कहै प्रोहित सुन बात । आज्ञा कौन न है कहु भ्रात ॥
सुन प्रोहित वाणी उच्चरै । बाहूबलि आज्ञा नहिं धरै ॥२०४॥
तब तत्काल चल्यो नरराय । पोदनपुर ढिग पहुंचो जाय ॥
युगल चमू जब सन्मुखआय । मंत्री मतो करें सुखदाय ॥२०५॥
चरमशरीरी दौनों भ्रात । होय नहीं कोउ को तन घात ॥
वृथा सैन मारी सब जाय । तातें इम कीजे नर राय ॥२०६॥
युद्ध करो दोउ भ्रात विचार । जीतै सो आज्ञा विस्तार ॥
नेत्रयुद्ध जलयुद्ध वखान । मल्लयुद्ध निश्चित मन आन॥२०७॥
युद्ध परस्पर दौनों वीर । करें हिये साहस धर धीर ॥

हुंडवसर्पिणि दोष महान । चक्रवर्ति हार्‌यो तिहुं थान॥२०८॥
मन मलीन निजभ्रात निहार । बाहुबली मनकरै विचार ॥
धृक यह राज्य महा दुखदाय । ज्येष्ठ सहोदर मान नशाय ।२०९।

कुसुमलता—यह संसार असार निहार्‌यौ, चारों गति दुखदाय सही । चौरासी लख योनि फिर्‌यो जिय, दुर्लभमानुष देह लही ॥२१०॥ आस्रव कर्म महा दुखदाई, जासु उदय जन जन्म गहैं । राजसाज धन यौवन जीवन, सब अनित्य थिर नाहिं रहैं ॥ २११ ॥ तीन लोक षट्‌द्रव्य चराचर, सूक्ष्मस्थूल विशेष भरे । दुर्लभ धर्म जिनेश्वर भाषित, जासों जिय भव जलधि-तरे ॥ २१२ ॥ एक अकेल्यो जीव फिरै यह, शरण जगत में कोइ नहीं । जीव निरन्तर सप्त धातु मय, अशुच अपावन देह गही॥२१३॥ संवर भाव किये बिन प्राणी, भव अनन्त दुख बन्ध करै । कर्म

निर्जरा जीव करे जब, शिवरमणी चण माहिं वरे ॥ २१४ ॥

दोहा—बाहूबलि वैराग्य मन, द्वादश भावन भाय ।
पंच महाव्रत आचरे, ध्यान धर्यो वन जाय ॥२१५॥

भरत चक्रपति देख यह, निज मन माहिं विचार ।
बाहूबलि के तनुज को, राज्य दियो सुखकार ॥२१६॥

(१०) ब्राह्मण वर्णोत्पत्ति

दोहा—इस प्रकार षट खंड में, आन फिराई राय ।
फिर आये निज नगर में, राज्य करें सुखदाय ॥२१७॥

चौपई—एक समय मन भरत विचार । दान लैन जिन है अधिकार ॥
ज्ञान विवेक सहित जे होंय । नित्य दान लेसकि हैं सोय ॥२१८॥
विद्याध्ययन करें करवांय । अन्य जीविका सब विसरांय ॥
ऐसे शुद्धाचारी गृहस्थ । तिनको ब्राह्मण दियो पद्स्थ ॥ २१९ ॥

शेष तीन वर्णी जे जान। देयँ भक्ति युत तिनहिं सुदान ॥
पुनि जिन-समवशरण में जाय। श्रीजिन पूजे मन हर्षाय।२२०।
धर्म अगारी अरु अनगार*। भरत सुन्यो शिव सुख दातार ॥
ब्राह्मण-दान विधी पूछन्त। सुन गण धर भाषें सुन सन्त॥२२१॥
मिथ्यामत पोषक यह होंय। सुन कम्पित चित अति ह्वै सोय॥
नमस्कार कर निजपुर आय। राज नीति पालै नृप राय ॥२२२॥

(११) भगवान ऋषभ को निर्वाण पद-प्राप्ति।

दोहा—समवशरण श्री ऋषभ जिन, नाना देश विहार।
करि कैलास गये प्रभू, एक मास थिति सार ॥ २२३ ॥
कायोत्सर्ग स्वरूप जिन, शेष कर्म*करि नाश।

* अगारा—गृहस्थ। अनगार—गृहत्यागी, निर्ग्रन्थ मुनि। शेषकर्म-अघातिया कर्म की शेष ८५ प्रकृतियाँ।

नोट—१४ वीं अयोग गुणस्थान का काल पंच लघु अक्षर (अ, इ, उ, ऋ, लृ) के

पंच लघुअक्षर काल में, कीनो शिवपुर वास ॥ २२४ ॥

चौपई—इन्द्र आय अष्टापद*थान । मोक्ष-कल्याणक कर सुखदान ॥

सुन भरतेश चल्यो हर्षाय । गिरि अष्टापद पहुंच्यो जाय ॥२२५॥

शिव-कल्याणक पूजा करी । बहु प्रकार अस्तुति उच्चरी ॥

चौबीसी त्रय बिम्ब भराय । पूजा कर निज नगरी आय॥२२६॥

राज्य करै नृप पालै नीति । सब सुखदाई धर्म पुनीति ॥

सुन श्रेणिक निश्चय मन आन । हुंडवसर्पिणी दोष महान ।२२७।

सम्मेदाचल जग विख्यात । सब तीर्थंकर शिवपुर जात ॥

पै इस काल दोष वश चार । अन्यस्थान भये भव पार ॥२२८॥

उच्चारण काल समान एक अन्तर्मुहूर्त है। इस काल के अन्तिम दो समयों में क्रम से ७२ व १३ एवं ८५ प्रकृतियों का क्षय होता है। और ४७ घातिया व १६ अघातिया, एवं ६३ प्रकृतियों का क्षय १२ वें क्षीणमोह गुणस्थान के अन्तिम समय तक हो जाता है॥

* अष्टापद-कैलाश पर्वत का नाम।

ऋषभ देव कैलाश बखान। वासूपूज्य चम्पापुर थान ॥
नेमिनाथ स्वामी गिरिनार। महावीर पावापुरि सार ॥ २२९ ॥
शेष बीस तीर्थङ्कर देव। शिखर समेद कियो भव छेव ॥
काल अनन्त हुओ अरु होय। अगणित चौबीसी शिव जोय ॥२३०
मुनिवर असंख्यात तिस थान। मुक्ति गये कर आतम ध्यान॥
तातें परम पूज्य गिरि सोय। पूजै शिव सुख निश्चय होय ॥२३१॥

दोहा—मन सुख सागर ऋषभ जिन, आठों कर्म नशाय ॥
अष्टापद के शिखर तें, पहुंचे शिवपुर जाय ॥ २३२ ॥
चौबीसीत्रय के तहां, रचे भरत चैत्याल ॥
सो पवित्र महापूज्य थल, नमूं नमूं नुन भाल ॥ २३३ ॥

इति श्री काष्ठासंघे लोहाचार्य विरचिते श्री वर्धमान चतुर्विंशति
जिन पुराणान्तर्गत श्री ब्रह्मचारी मनसुख सागर कृत श्री
ऋषभ पुराणस्य भाषा छन्दोबद्ध टीका समाप्तं ॥

॥ ॐ ॥

श्री जिनाय नमः।

चैतन्यकृत "श्री वर्त्तमान चतुर्विंशति जिनपुराण" भाषा वचनिका

(श्री जिनषेण–गुणभद्राचार्य कृत संक्षिप्त महापुराण)

प्रथम खण्ड

श्री ऋषभ-पुराण

संक्षिप्त आदि पुराण

अथ मङ्गलाचरण

विघ्नहरण ऋषभादि जिन, महावीर पर्यन्त ।
हार्द त्याग संसार का, हुए मुक्ति–तिय कन्त ॥

रिपु आठों को नष्ट कर, जिन पायो विश्राम ।
इक्षुवंश-मुख ऋषभ की, कथा कहूं सुखधाम ॥

अथ कथाभूमि

(१) कथा-लक्षण

(आदि पु० पर्व १, श्लोक ११८-१२५)

मोक्ष पुरुषार्थ के उपयोगी धर्म अर्थ और काम इस त्रिवर्ग की कथा कहना ही वास्तव में 'कथा' कहलाती है। उसमें भी जब मुख्यतः स्वर्ग मोक्षदायक धर्म का निरूपण किया जाता है उसे 'सत्कथा' या 'सद्धर्मकथा' कहते हैं। धर्म के फल स्वरूप जो २ अभ्युदय प्राप्त होते हैं उनमें अर्थ और काम भी मुख्य हैं। अतः धर्मपूर्वक इन दोनों की कथा कहना भी 'कथा' या 'सुकथा' कहलाती है, अन्यथा धर्म शून्य अर्थ-कथा और काम-कथा 'विकथा' या 'कुकथा' कहलाती है जिनसे केवल पापास्रव ही होता है। जो कथा दुराचार छुड़ाकर सदाचार

के सन्मुख करे, जो अधर्म युक्त दुराचरणों का दुष्फल नरकादिगमन और धर्मानुरागयुक्त सत् आचरणों का शुभ फल स्वर्ग मोक्षादि प्राप्ति के एक या अनेक उदाहरणों द्वारा धार्मिक कार्यों में रुचि और धर्म विरुद्ध कार्यों में अरुचि उत्पन्न करे और जो आत्मा में रत्नत्रय धर्म अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान सम्यक् चारित्र उत्पन्न करने के लिये कारणभूत हो वही कथा वास्तव में "सत् धर्म कथा" है। इसके द्रव्य, क्षेत्र, तीर्थ, काल, भाव, फल और प्रकृत ये सात अङ्ग हैं॥

(२) पुराण लक्षण

(आदि पु० पर्व १, श्लोक १६-२५, पर्व २, श्लोक ३८, ३९, ४०)

जिस धर्मकथा में या धर्मकथा-ग्रन्थ में तीर्थङ्कर, चक्रवर्ति, बलिभद्र, नारायण, प्रति नारायण, इन महा पुण्याधिकारी शलाका पुरुषों के चरित्र का तथा इनके संबन्ध से अन्य पदवीधारक पुण्यपुरुषों अथवा अन्यान्य प्रसिद्ध पुरुषों की कथा का या पुरातन इतिहास का निरूपण हो उसे "पुराण" कहते

हैं। पुराण के मुख्य अङ्ग पांच हैं। क्षेत्र (त्रिलोक), काल (त्रिकाल), तीर्थ (रत्नत्रय धर्म), सत्पुरुष (शलाका पुरुष) और सत्पुरुषों की क्रियाएँ (चरित्र)।

(३) वक्ता लक्षण।

(आदि पु० पर्व १, श्लोक १२६-१३७)

सद्धर्म कथा का कहने वाला 'सद्वक्ता' कहलाता है। वक्ता के अन्य नाम वद, वदावद, और वक्तृ भी हैं। उसके ये लक्षण हैं:—शिथिलाचार रहित सदाचारी हो; स्थिर-बुद्धि गम्भीर और जितेन्द्रिय हो; जिसकी सब इन्द्रियां समर्थ हों; जिसके अंग सुडौल और सुन्दर हों; जिसके वचन मिष्ट स्पष्ट सर्व-प्रिय और निर्दोष हों, जिसकी चित्त-वृत्ति सर्वज्ञ वीतराग प्रणीत आगमरूपी महासमुद्र के वाक्यार्थ रूपी जल से धुली हुई अतिशय निर्मल हो; जो तेजस्वी और अनेक सभा-विजयी हो; प्रतिष्ठित और यशस्वी हो, प्रत्येक विषय में जिसकी बुद्धि प्रवेश कर सकती हो, अनेक प्रश्नों तथा अनेक तर्क कुतर्कों का सहन करने वाला हो, निरभिमानी, दयालु, प्रेमी, सुबुद्धि, दूरदर्शी, विचक्षण, अधीती,

अर्थात् अध्ययन विशिष्ट और अनेक विद्या निपुण हो। जो नाना भाषा-विशारद नानोपाख्यान-कुशल, और नाना शास्त्र कलाभिज्ञ हो; इत्यादि गुण युक्त वक्ता ही उत्तम वक्ता कहा जाता है। प्रत्येक वक्ता को उचित है कि वह व्याख्यान देते समय न तो चुटकी बजावें, न भौं चलावें, न किसी पर आक्षेप करे, न हँसे, न बहुत उच्चस्वर से न अति धीरे से बोले, आवश्यकता होने पर सभ्यतायुक्त और उद्धतता रहित उच्च स्वर से बोले, श्रोताओं की अनेक निर्मूल शंकाओं पर भी क्रोध न करे, न उन पर हँसी उड़ावे और न उनका तिरस्कार करे, किन्तु मिष्ठ वाणी से कोमल शब्दों द्वारा शंकाओं की निर्मूलता आदि दिखाकर और यथोचित उत्तर देकर उनका समाधान करने में प्रयत्नशील हो। श्रोताओं की योग्यता, आकांक्षा और आवश्यकता आदि को समझ कर उनके उपकारार्थ यथा योग्य और यथा अवसर आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, संवेदिनी या निर्वेदिनी कथा कहै और कथा सुनाने के उपकार में श्रोताओं से किसी प्रति-उपकार की अर्थात् बदले में धनादि लेने की वाञ्छा या आशा न रखे, किंतु केवल यथार्थ सन्मार्ग का उपदेश दे। वक्ता के मुख्य गुण सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान, आचरण, निर्भीकता,

निरभिमानता, इन्द्रिय विजयता और सहनशीलता हैं। ये गुण जितने अधिक निर्मल और उच्च श्रेणी के होंगे उतना ही वह वक्ता अधिक मान्य है। सर्वोत्कृष्ट निर्दोष वक्ता श्री तीर्थंकर देव तथा गणधर देव हैं।

(४) श्रोता लक्षण

(आदि पु० पर्व १, श्लोक १३८—१४७)

धर्म-कथा श्रवण करने वालों को श्रोता कहते हैं। इनके उत्तम, मध्यम, जघन्य और निकृष्ट (अधम) ये चार भेद हैं। उनके लक्षण ये हैं:—संसार के जन्म, जरा, मरणादि अनेक कष्टों को देखकर जिसका मन इन कष्टों से छूटने का अभिलाषी हो, जिसका मन धर्म कथा श्रवण करने के लिये सदा उत्कण्ठित हो, सरल स्वभावी, कोमल चित्त, भद्र परिणामी, सन्मार्गान्वेषी और सद्धर्मग्राही हो, अपने हिताहित को पहिचानने तथा ज्ञेय, हेय और उपादेय पदार्थों और उनके स्वरूपादि को समझने और समझ कर ज्ञेय को जानने, हेय को त्यागने और उपादेय को ग्रहण करने में यथाशक्ति सदा उद्यमशील हो, गुणग्राही और अवगुण त्यागी हो, हठग्राही, छिद्रान्वेषी, कलहप्रिय, कृतघ्नी,

प्रलापी, वक्रवादी और ठठोल न हो। इन उपरोक्त गुणों सहित जो भव्य प्राणी सम्यग्दर्शन और सदाचार युक्त सुशील हैं, जो तीक्ष्ण बुद्धि, लौकिक विद्या-निपुण और विवेकी हैं, जो तृण खाकर दुग्ध देने वाली गौ के समान थोड़ा सुन कर भी बहुत कुछ समझ जाने वाले और पूर्ण कृतज्ञ हों। जो जल त्याग कर दुग्ध के सारभाग को ग्रहण कर लेने वाले हंस की समान धर्म कथा को सुन कर उसमें से अपनी शक्ति, योग्यता और आवश्यकतानुसार सार उपदेश को ग्रहण करलें वे उत्तम श्रोता हैं। जो सम्यग्दर्शन रहित और सदाचारी अथवा कुसंगवश सदाचार रहित हैं। जो मंदबुद्धि और अति अल्पज्ञ हैं, जल मिश्रित होने पर कोमल और पश्चात् सूख कर कठिन हो जाने वाली मिट्टी की समान, जो धर्मकथा सुनने के समय कोमलचित्त और पश्चात् कठोरचित्त होजायँ; जो तोते के समान स्वयं अज्ञान हैं पर बिना समझे धर्मोपदेश सुनकर या दूसरों को देखकर धार्मिक कार्यों का अनुकरण करते हैं वे मध्यम श्रोता हैं। जो सम्यग्दर्शन रहित और कुसंगवश सदाचार शून्य हैं, जो अति मंदबुद्धि और अति अल्पज्ञ हैं, जिनकी स्मरणशक्ति भी अतिमन्द है, जिन्हें धर्मकथा श्रवण करने की रुचि स्वयं कभी

उत्पन्न नहीं हुई, किंतु वक्ता या अन्य श्रोताओंकी प्रेरणा से धर्मकथा श्रवण करते हैं; जो बकरे के समान अतिकामी और विषयासक्त हैं, वे जघन्य श्रोता हैं। जो उपरोक्त गुणों से शून्य हैं और जो चालनी की समान सार वस्तु को त्यागते और असार ही को ग्रहण करते हैं, जो बिल्ली की समान दुष्टचित्त और परघातक हैं, जो बगुले के समान बाहर से कोमल चित्त और त्याग व्रतादि युक्त सुशील जान पड़ें परन्तु जिनका अंतरंग अतिशय मलिन हो; जिनका मन बारम्बार धर्म कथा सुनते रहने पर भी पाषाण के समान सदा कठोर बना रहे और कभी किसी भी हितकारी बातको ग्रहण न करें, जो दुग्ध पी कर भी विष उगलने वाले सर्प के समान गुणयुक्त बातों में भी सदा अवगुण ही निकालें, अथवा सारको असार और सीधे को उलटा ही समझें, जो किसी जलाशय में प्रवेश कर उसके निर्मल जलको मलिन और गदला कर देने वाली भैंस के समान व्याख्यान में उपद्रव मचावें, फूटे घड़े के समान जिनके हृदय में कभी कोई उपदेश न ठहरे, जो डांस मच्छरों के समान सभाजनों को व्याकुल करें, जो स्तनों में के दुग्ध को त्यागकर केवल रुधिर ही पीने वाली जौंक के समान गुणत्यागी और

अवगुण ग्राही हों वे "निकृष्ट" या "अधम" श्रोता हैं।

इनके अतिरिक्त जो श्रोता नेत्र, तुला, दर्पण और कसौटी के समान गुण दोष को ज्यों का त्यों यथार्थ रूप से पहिचानने और देखने दिखाने में समर्थ हैं वे धर्म-कथा रूपी रत्न के परीक्षक हैं। और जिनका अभिप्राय सदा वितंडावाद या ठठोली आदि करने ही का हो उनकी गणना किसी प्रकार के भी श्रोताओं में नहीं है। श्रोताओं के मुख्य गुण शुश्रूषा (उपासना सेवा व श्रवणाकांक्षा) श्रवण, ग्रहण, धारण, स्मृति, ऊह (अनुसन्धान या खोज और अपूर्व विचार), अपोह (तर्क वितर्क पूर्वक हेय का त्याग और उपादेय का ग्रहण), और निर्णीति (शोधन या निर्णय करने की रुचि), ये आठ हैं।

चौबीस तीर्थंकरों की धर्मोपदेश-सभा के मुख्य श्रोता क्रम से (१) भरत, (२) सगर, (३) सत्यवीर्य, (४) मित्रभव या राजमित्र, (५) मित्रवीर्य या भावमित्र, (६) यज्ञदत्त या धर्मवीर्य, (७) दानवीर्य, (८) मेघव्रत; (९) शुद्धवीर्य, (१०) सीमन्धर, (११) त्रिपृष्ट प्रथम नारायण (१२) द्विपृष्ट द्वितीय नारायण (१३) स्वयंभू तृतीय नारायण, (१४) पुरुषोत्तम चतुर्थ नारायण, (१५) पुरुष

पुंडरीक या पुरुषसिंह पंचम नारायण, (१६) पुरुषदत्त या सत्यदत्त या हरिकीर्ति (१७) कुनलराय, (१८) गोविन्दराय सुभौम, (१९) सुलूमाराय सार्वभौम, (२०) अजितराय या अजितंजय, (२१) विजयराय, (२२) उग्रसैन (या नवम नारायण कृष्ण), (२३) महासेन (या अजितराय द्वितीय), (२४) श्रेणिक बिम्बसार, ये चौबीसों तथा अन्य तीर्थङ्करों की सभा के अन्यान्य अनेक मुख्य श्रोता भी सर्वोत्कृष्ट श्रोता हैं ॥

(५) कालद्रव्य

जो जीव पुद्गलादि षट् द्रव्यों को एक पर्याय से अन्य पर्यायरूप परिणवने में असाधारण निमित्त कारण हो ऐसे "वर्तना" लक्षण युक्त पदार्थ को "कालद्रव्य" कहते हैं। यह कालद्रव्य एक प्रदेशी है। यद्यपि कालद्रव्य के कालाणु सर्व लोकाकाश में व्याप्त असंख्यात हैं तथापि जीवादि शेष पांच द्रव्यों के समान इसके एक एक प्रदेशी कालाणु एक पिंडरूप या कायरूप कभी नहीं होते किन्तु आकाश द्रव्य के प्रत्येक प्रदेश पर एक एक कालाणु व्याप्त रहकर सर्व कालाणु सदैव भिन्न भिन्न ही रहते हैं। अतः पिण्ड या कायरूप न होने से कालद्रव्य "अकाय" कहलाता है।

यही "निश्चय कालद्रव्य" है। समय, आवली, विपल, पल, घटिका, मुहूर्त, अहोरात्रि, सप्ताह, पक्ष, मास, वर्ष आदि उस निश्चय कालद्रव्य की पर्याय हैं जिनका निमित्त कारण ज्योतिष चक्र है। कालद्रव्य की इन पर्यायों ही को "व्यवहार काल" कहते हैं॥

इस व्यवहार काल के एक बहुत बड़े विभाग या चक्र का नाम "कल्पकाल" है। इस कल्पकाल चक्र के दो अंग अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी नाम से प्रसिद्ध हैं। जिस में मनुष्यों और तिर्यंचों का बल, आयु, देह परिमाण आदि क्रम से घटते जांय, पृथ्वी का परिमाण भी संकुचित होता जाय, वनस्पति आदि पार्थिव पदार्थों की सुन्दरता, रसास्वाद और शक्ति आदि गुण क्रम घटते जांय, सूर्य चन्द्र की उष्णता व शीतलता का तथा वनस्पति आदि पदार्थों को पोषण करने की शक्ति आदि का ह्रास होता जाय उसे "अवसर्पिणीकाल" कहते हैं। इस के विरुद्ध जिस काल विभाग में इन सब की क्रम से वृद्धि होती जाय उसे "उत्सर्पिणीकाल" कहते हैं॥

इन दो काल विभागों में से प्रत्येक का परिमाण १० कोड़ाकोड़ी सागरोपम काल है और प्रत्येक विभाग छह छह उपविभागों में विभाजित है। सुषमा-सुषमा, सुषमा,

*सुषमादुःषमा, दुःषमासुषमा, दुःषमा, दुःषमा-दुःषमा, ये छह एक दूसरे के पश्चात् क्रम से बीतनेवाले अवसर्पिणी के उपविभाग हैं और दुःषमादुःषमा, दुःषमा, दुःषमासुषमा, सुषमादुःषमा, सुषमा, सुषमासुषमा, ये छह एक दूसरे के पीछे क्रम से बीतनेवाले उत्सर्पिणी के उपविभाग हैं। काल विभाग के ये सब नाम सार्थक हैं। अवसर्पिणी के उपविभाग क्रम से ४, ३, २ कोड़ाकोड़ी सागरोपम, ४२ सहस्र वर्ष बाद एक कोड़ा कोड़ी सागरोपम, २१ सहस्र वर्ष और २१ सहस्र वर्ष के होते हैं। इसी प्रकार उत्सर्पिणी के उपविभाग क्रमसे २१सहस्र वर्ष, २१सहस्र वर्ष, ४२ सहस्र वर्ष बाद एक कोड़ाकोड़ी, २, ३, ४ कोड़ा कोड़ी सागरोपम काल के होते हैं। जिस प्रकार पूर्णिमा के चन्द्रमा की किरणें कृष्णपक्ष में १५ दिन तक प्रतिदिन अथवा प्रतिक्षण क्रम से घटती जाती हैं और फिर शुक्लपक्ष प्रारम्भ होकर जिस क्रम से किरणें घटी थीं ठीक उसी क्रम से १५ दिन तक प्रतिदिन अथवा प्रतिक्षण बढ़ती जाती हैं और इस प्रकार चान्द्र मास का एक छोटा काल चक्र पूर्ण होकर फिर उसी प्रकार दूसरा वैसा ही

* सुषम या सुषमा=मनोज्ञ, सुन्दर, अति शोभन, प्रशस्त, और सुखदायक समा। दुःषम या दुःषमा=अमनोज्ञ, अप्रशस्त, निकृष्ट, और दुःखदायक समा॥

कालचक्र घूमने लगता है और ऐसे कालचक्र एक चान्द्रवर्ष में १२ घूम जाते हैं। तब चान्द्रवर्ष नाम का एक बड़ा कालचक्र पूर्ण हो जाता है। अथवा जिस प्रकार एक सौरवर्ष चक्र के दो अंग या विभाग दक्षिणायन और उत्तरायण हैं और इन में से प्रत्येक के ऋतु नाम के तीन तीन उपविभाग या सौर मास नाम के छह छह उपविभाग हैं जिन में से दक्षिणायन के छह उपविभागों में उत्तरी देशों में नित्यप्रति दिन का परिमाण क्रम से घटता जाता है और फिर उत्तरायण प्रारम्भ होकर ठीक उसी क्रम से दिन का परिमाण बढ़ता जाता है और इस प्रकार सौरवर्ष का एक कालचक्र पूर्ण होकर फिर उसी प्रकार दूसरा वैसा ही कालचक्र घूमने लगता है; ठीक इसी प्रकार कल्पकालनाम का एक बहुत बड़ा चक्र अपने १२ उपरोक्त उपविभागों के यथा क्रम बीतने पर पूर्ण होजाता और फिर दूसरा वैसा ही बड़ा कालचक्र घूमने लगता है॥

ये कल्पकाल नामक बड़े बड़े कालचक्र जब असंख्य बीत जाते हैं तब एक महा कल्पकाल नाम का महाकालचक्र पूर्ण होता है जिसका कोई कोई अवसर्पिणी काल "हुंडावसर्पिणी" नाम से प्रसिद्ध है। जिस प्रकार सौरवर्ष-चक्र सदैव सब एक से नहीं बीतते, किन्तु गणित ज्योतिष के नियमानुकूल कोई कोई वर्ष चक्र अतिवृष्टि या

अनावृष्टि आदि दोषों से युक्त अथवा चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, धूम्रकेतु आदि युक्त असाधारण रीति से बीतता है। इसी प्रकार बहुत से कल्पकाल के चक्र बीतने पर कभी कभी कोई अवसर्पिणी काल असाधारण रीति से बीतता है। ऐसे ही असाधारण अवसर्पिणी काल को "हुण्डावसर्पिणी" काल कहते हैं। आजकल हमारे भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में इसी हुण्डावसर्पिणी काल का पांचवां विभाग "दुःषमा" नामक काल वर्त रहा है जो २१ सहस्र वर्ष का है और जिसका प्रारम्भ श्री वीर निर्वाण दिन से ३ वर्ष ८॥ मास पीछे श्रावण कृ० १ से हुआ है। प्रत्येक "दुःषमा सुषमा" काल में जो अवसर्पिणी का चौथा और उत्सर्पिणी का तीसरा उपविभाग है इस भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलिभद्र, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ये ६३ महापुण्य-पुरुष तथा २४ कामदेव, ११ रुद्र, ९ नारद आदि अन्य भी निकट भव्य पुण्य पुरुष उत्पन्न होते रहते हैं। प्रत्येक अवसर्पिणी के तीसरे उपविभाग "सुषमा दुःषमा" नामक काल के अन्त में जब एक पल्योपम काल का अष्टम भाग शेष रह जाता है, और प्रत्येक उत्सर्पिणी के "दुःषमा" नामक दूसरे उपविभाग के अन्त में जब केवल एक सहस्र (१०००) वर्ष शेष रह जाते हैं तब

कुलकर या मनु पदवीधारक १४ (या १६) पुण्यपुरुष थोड़ा २ अन्तराल देकर एक दूसरे के पश्चात् उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक सुषमासुषमा काल में उत्तम भोग भूमि, सुषमा में मध्यम भोगभूमि और सुषमा दुःषमा में जघन्य भोगभूमि की रचना और शेष तीन विभागों में कर्मभूमि की रचना रहती है॥

नोट १–प्रत्येक ७४ कल्पकाल बीतने पर (१४८ चौवीसी व्यतीत होजाने पर) एक हुंडक काल आता है जिसमें शेष कालों से कोई कोई विलक्षण बातें वर्तती हैं। यथा (१) तीर्थंकर के पुत्रीका जन्म, (२) चक्रवर्ती का अपमान, (३) प्रथम तीर्थंकर का "सुषम दुःषम" अर्थात् अवसर्पिणी के तृतीय काल ही में निर्वाण गमन, (४) कोई कोई तीर्थंकर कई कई पदवी धारक हो जाने से ६३ शलाका पुरुषों की या १६९ पुण्य पुरुषों की संख्या में कुछ कमी पड़जाना, (५) तीर्थंकरों पर उपसर्ग होना (६) नियमित उत्कृष्ट आयु से किसी किसी मनुष्य की आयु का बढ़जाना, इत्यादि।

नोट २–हुंडावसर्पिणी के समान हुंडकोत्सर्पिणी काल भी १४८ चौवीसी ही बीतने पर आता है।

नोट ३–१४८ हुंडक काल या १०९५२ कल्प काल बीतने पर अढ़ाई द्वीप से हर ६ मास ८ समय में ६०८ जीवों के निर्वाण गमन का उत्कृष्ट अन्तराल ६ मास का आपड़ता है।

(६) भोगभूमि व कर्मभूमि ❀

(आदिपुराण पर्व ३, श्लोक १४–२३९, पर्व ९ । ३४–८८)

जिस भूमि में पुण्योदय से मनुष्यों और पशुओं को बिना किसी परिश्रम के सर्व प्रकार की भोग-सामग्री कल्पवृक्षों द्वारा प्राप्त हो उसे भोगभूमि कहते हैं। जिस भूमि में असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प और विद्या या सेवा, ये आजीविकार्थ षट्कर्म तथा पूजा, दानादि धार्मिक नित्य नैमित्तिक षट कर्म करने की आवश्यक्ता पड़े उसे कर्मभूमि कहते हैं। सर्व मनुष्य क्षेत्र (अढ़ाईद्वीप) में ५ देव-कुरु और ५ उत्तरकुरु क्षेत्र उत्तम भोगभूमि के क्षेत्र हैं। ५ हरि और ५ रम्यक क्षेत्र मध्यम के, और ५ हैमवत व ५ हैरण्यवत क्षेत्र जघन्य भोगभूमि के क्षेत्र हैं।

❀ भोगभूमि व कर्मभूमि सम्बन्धी कथन विशेषरूप से जानने के लिये इसी ग्रन्थ लेखक लिखित "श्री बृहत् जैन शब्दार्णव" नामक जैन शब्दार्थ कोष में शब्द "अढ़ाई द्वीप" की व्याख्या पृष्ठ २५५ से २५९ तक अथवा श्री आदिपुराण पर्व ३, तथा पर्व ९ श्लोक ३४ से ८८ तक देखें।

अ पु.

इस प्रकार यह ३० क्षेत्र नित्य-भोगभूमि के हैं। ५ विदेह क्षेत्र, और ५ भरत व ५ ऐरावत, इन १० क्षेत्रों के १० म्लेच्छ खण्ड तथा उनके दसों विजयार्द्ध पर्वतों की श्रेणियां नित्य कर्मभूमि के क्षेत्र हैं जिनमें "दुःषमा-सुषमा" नामक काल सदैव वर्तता है। और शेष ५ भरत और ५ ऐरावत क्षेत्रों के दस आर्यखण्ड अनित्य-भोगभूमि और कर्मभूमि दोनों के क्षेत्र हैं, अर्थात् इनमें अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के उपरोक्त बारहों उपविभाग एक दूसरे के पश्चात् क्रम से वर्तते रहते हैं॥

उत्तम, मध्यम और जघन्य भोगभूमियों में से प्रत्येक के प्रारम्भ में मनुष्योंकी उत्कृष्ट शरीरावगाहना क्रम से ३, २, १ कोश की, और उत्कृष्ट आयु ३, २, १ पल्योपम काल की होती है और क्रमसे घटती हुई उन्हीं उत्तम, मध्यम और जघन्य भोगभूमियोंमें से प्रत्येकके अन्तमें जघन्य शरीरावगाहना क्रमसे २कोश, १ कोश, ५०० धनुष, और जघन्य आयु २ पल्योपम, १ पल्योपम और १कोटि पूर्वकी होती है। उत्तम, मध्यम, जघन्य भोगभूमिजों का आहार क्रम से ३ दिन, २ दिन, १ दिन का अन्तर देकर हर पाँचवें, चौथे और तीसरे दिन केवल बेर, बहेड़ा और

आँवला प्रमाण होता है ॥

कर्म भूमि के दुःषमा-सुषमा, दुःषमा और दुःषमा-दुःषमा कालों के प्रारम्भ में मनुष्यों की उत्कृष्ट शरीरावगाहना क्रम से ५०० धनुष, ७ हाथ, २ हाथ की, और उत्कृष्ट आयु क्रम से १ कोटि पूर्व, १२० वर्ष, २० वर्ष की होती है। अन्त में उत्कृष्ट शरीरावगाहना क्रम से ७हाथ, २ हाथ, १ हाथ की और उत्कृष्ट आयु क्रम से १२० वर्ष, २०वर्ष और १५ वर्ष की होती हैं। आहार क्रमसे नित्य प्रति प्रायः एकबार, अधिक बार, अति अधिक बार किया जाता है ॥

भोगभूमिजों की अकाल मृत्यु नहीं होती, वे सदा निरोग रहते हैं, उन्हें मल मूत्र की बाधा भी नहीं होती, न उनके शरीर पर पसीना आता है। उनकी आकृति स्वाभाविक ही बड़ी सुन्दर, चेष्टा चतुर और वाणी मिष्ट होती है। उनके शरीर का संस्थान समचतुरस्र और संहनन वज्रवृषभनाराच होता है। तूर्यांग, पात्रांग, भूषांगणांग, पान, आहारांग, पुष्पांग, ज्योतिरांग, गृहांग, वस्त्रांग, दीपांग, इन दश प्रकार के कल्पवृक्षों से भोगभूमिजों को सर्व प्रकार की भोगोपभोग सामग्री प्राप्त होती है। उन्हें असि, मसि, कृषि आदि कोई कर्म आजीविका के लिये नहीं करना पड़ता;

उन में राजा प्रजा का भेद नहीं होता: न परस्पर कोई कलह, विरोध, या लड़ाई दङ्गा होता है। सर्व ही सरल-स्वभावी, सत्य-वादी, सन्तोषी और सुशील होते हैं। आयु के अन्त में स्त्री को केवल एक बार गर्भ रहता है जिससे स्त्री-पुरुष का एक युगल जन्म पाकर और तुरन्त ही माता को छींक और पिता को जम्हाई आकर बड़े सुखपूर्वक माता पिता की एक साथ मृत्यु होजाती है। सन्तान को माता पिता का या माता पिता को सन्तान का, तथा स्त्री पुरुष को परस्पर का वियोग देखना नहीं पड़ता। स्त्री पुरुष दोनों ही को शरीर त्याग कर नियम से देवगति होती है। मृतक शरीर कपूर-सम तुरन्त उड़कर वायु में मिल जाता है। वे युगल बालक अपने जन्म के प्रथम सप्ताह में स्वच्छ पृथ्वी पर पड़े हुए अपना अंगुष्ठ चूस चूस कर जीवित रहते हैं, दूसरे सप्ताह में ऊर्द्ध मुख करके कुछ सरकने लगते हैं। तीसरे सप्ताह में खड़े होकर लड़खड़ाते हुए और चौथे सप्ताह में स्थिरता से भले प्रकार चलने फिरने लगते हैं, पांचवें सप्ताह में वे अनेक कलागुण सम्पन्न होजाते हैं, छठे सप्ताह में पूर्ण युवावस्था प्राप्त करलेते हैं और सातवें सप्ताह में कल्पवृक्षों से प्राप्त हुए वस्त्राभूषणों से सुशोभित होकर स्त्रीपुरुष (पति-पत्नी) बन जाते हैं ॥

(७) १४ कुलकर या मनु

(आदिपुराण पर्व ३ श्लोक ५६–२३९, पर्व ६ श्लोक३४–८८)

भोगभूमि का समय नष्ट होने के चिन्ह प्रकट होने पर जो महा पुरुष अपने पूर्व जन्म संस्कारवश अन्य भोगभूमिज मनुष्यों से अधिक ज्ञानी और बुद्धिमान उत्पन्न होते हैं, जिन्हें यातो जातिस्मरण या अवधिज्ञान होता है और जो अपनी इस ज्ञान शक्ति द्वारा अन्य भोगभूमिज मनुष्यों को यथा आवश्यक शिक्षा देते, उनका भय दूर करते, उनकी आवश्यक्ताओं की पूर्ति के लिये योग्य विधि बताते और कुल बनाकर अर्थात् थोड़े थोड़े इकट्ठे होकर मेलमिलाप के साथ रहने का उपदेश देते और इस प्रकार कुलों या वंशों की उत्पत्ति के स्थापक होते हैं उन्हें "कुलकर" या "कुलधर" (कुल स्थापक) कहते हैं। बिना शिक्षा पाये अपने मनोबल से उत्पन्न होनेवाली शक्ति द्वारा जीवन का उपाय जानने के कारण उन महापुरुषों को "मनु" भी कहते हैं। जम्बू-द्वीपान्तर्गत भरतक्षेत्र के हमारे आर्यखन्ड में जब वर्तमान हुण्डा-वसर्पिणी काल के प्रथम, द्वितीय, और तृतीय काल में क्रम से उत्तम, मध्यम, और

जघन्य भोगभूमि का लगभग ९ कोड़ाकोड़ी सागरोपम काल सुख पूर्वक बीतने पर जब सुषम-दुःषम नामक जघन्य भोगभूमि के दो कोड़ाकोड़ी सागरोपमकाल में से केवल एक पल्योपम काल का आठवां भाग शेष रहगया तब कर्मभूमि के चिन्ह प्रकट होने प्रारम्भ होजाने पर कुलकर और मनु संज्ञाधारक (१) प्रतिश्रुति, (२) सन्मति, (३) क्षेमंकर, (४) क्षेमन्धर, (५) सीमंकर, (६) सीमन्धर, (७) विमलवाहन, (८) चक्षुष्मान, (९) यशस्वान, (१०) अभिचन्द्र, (११) चन्द्राभ, (१२) मरुदेव, (१३) प्रसेनजित, (१४) नाभिराय, ये १४ महापुरुष एक ही सन्तान में एक दूसरे के पीछे लाखों वर्षों का अन्तराल दे दे कर उत्पन्न हुए। ये सब कुलकर अपने पूर्वभव में विदेह क्षेत्रों में अतिशय पुण्यवान् पुरुष थे। उस जन्ममें इन्होंने सुपात्रदान दिये, व्रताचरण आदि अनुष्ठान किये, जिनके पुण्यफल में इन्होंने अपनी आयु भोगभूमि में जन्म लेने की बाँधी। अन्त में इन्हें श्री जिनेन्द्र देव के निकट क्षायक सम्यक्त्व की और पूर्ण श्रुतज्ञान की भी प्राप्ति होगई थी। नवीन युग के प्रारम्भ में येही पुरुष प्रतापी और अधिक बुद्धिमान् होने से ये "युगादि पुरुष" भी कहलाते थे। इनके पश्चात् श्री नाभिराय कुलकर के पुत्र "श्री

ऋषभदेव" तीर्थंकर भी थे और कुलकर भी। तथा श्री ऋषभदेव के पुत्र भरतराज चक्रवर्ती भी थे और कुलकर भी। दोषी मनुष्यों को दंड देने के लिये इन में से पहिले ५ कुलकरों ने शोक सूचक "हा" यह एक दंड; अगले पांच ने शोकसूचक "हा" और निन्दा या निषेधसूचक "मा" ये दो दंड; और उनसे अगले ५ ने शोक, निन्दा या निषेध, और धिक्कारसूचक "हा", "मा", और "धिक्", ये तीन प्रकार के दंड नियत किये और इस प्रकार "राजनीति" बनाने की प्रथा चलाई ॥

उपर्युक्त १४ कुलकरों की आयु क्रम से एक पल्योपम काल का दसवां भाग, सौवां भाग, सहस्रवां भाग, दस सहस्रवां भाग, एक लाखवां भाग, दस लाखवां भाग, एक करोड़वाँ भाग, दश करोड़वां भाग, एक अर्बवाँ भाग, दस अर्बवां भाग, एक खर्बवां भाग, दश खर्बवां भाग, एक निखर्वां भाग, और एक कोटि पूर्व थी। इन १४ कुलकरों के १३ अन्तराल क्रम से एक पल्योपम काल का अस्सीवां भाग; आठसौवां भाग, आठसहस्रवां भाग, अस्सीसहस्रवां भाग, आठलाखवां भाग, अस्सी लाखवां भाग, आठ कोटिवां भाग, ८० कोटिवां भाग, ८ अर्बवां भाग, ८० अर्बवां भाग, ८ खर्बवां भाग, ८० खर्बवां भाग, और ८ निखर्वां भाग था। इन चौदहों

कुलकरों की उपरोक्त आयु और उनके अन्तराल काल का जोड़ एक पल्योपम काल के आठवें भाग से केवल एक पल्योपम काल का अस्सी लाख करोड़वां भाग अर्थात् ८ नियलवां भाग कम और एक करोड़ पूर्व काल है जो लगभग एक पल्योपम काल के आठवें भाग की बराबर ही है ॥

नोट—एक पूर्वकाल ७०५६०००००००००० (४ अङ्क और दस शून्य, सर्व १५ स्थान प्रमाण) वर्षों का होता है और एक पल्योपम काल ४१३४५२६,३०३०८२०३१७७४९५१२१९२,०००००००००००००००००००० (२७ अक और २० शून्य, सर्व ४७ स्थान प्रमाण) वर्षों का होता है। गणित करने से एक पल्योपम के ८ वें भाग में ५१६८१५,७८७८८५२५३९७२१८६८९०२४,०००००००००००००००००००० (२६ अङ्क और २० शून्य, सर्व ४६ स्थान) वर्ष, और एक पल्योपम के ८ नियलवें भाग में ५१६८१५७-८७८८१२,५३९७२१८६८३०२४००००००० (२६ अङ्क और ७ शून्य, सर्व ३३ स्थान) वर्ष होते हैं। इस संख्या को पहिली संख्या में से घटा कर १ कोटि पूर्वकाल के वर्ष एक कोटि गुणित ७०५६०००००००००० वर्ष, अर्थात् ७,०५६००००००००००००००००० वर्ष (चार अङ्क और १७ शून्य; सर्व २१ स्थान प्रमाण) जोड़ देनेसे चौदहों कुलकरों की आयु और उनके अन्तराल काल का सर्व समय ५१६८१५,७८७८८५२०२२९०६०८१०१७८,५२६२७८१३१०९७६००००००० (३९ अङ्क और ७ शून्य, सर्व ४६ स्थान प्रमाण)

वर्ष का ग्रास होजाता है जो एक पल्योपम काल का लगभग ८ वाँ भाग ही है। उत्सं-ख्यक गणना की इकाई दहाई के नियमानुसार इस ४६ स्थान प्रमाण संख्या को शब्दों में इस प्रकार उच्चारण करेंगे—पाँच लाख सोलह हज़ार आठ सौ पन्द्रह महाशंख, सातसौ सतासी परार्द्ध अठासी पद्म बावन नियल दो खर्व उनतीस अर्व छह कोटि आठ लक्ष दश सहस्र एक सौ अठत्तर शंख, पाँचसौ छब्बीस परार्द्ध सत्ताईस पद्म इक्यासी नियल इकतीस खर्व नव अर्व और छहत्तर कोटि ॥

(८) कर्म भूमि और "ऐतिहासिक" काल का प्रारम्भ

(आदिपुराण पर्व ३, श्लोक ५५–२३६)

भोगभूमि की अन्त सूचक जब कल्पवृक्षों की सामर्थ्य दिन पर दिन घटने लगी और ज्योतिरांग जाति के कल्पवृक्षों का प्रकाश अतिशय मन्द पड़गया तो सब से प्रथम आषाढ़ शु० पौर्णिमा के दिन सायंकाल में पूर्व दिशा की ओर से उदय होता चन्द्रमा और पश्चिम दिशा में अस्त होता सूर्य, ये दो अपूर्व पदार्थ भोग-भूमिजों को दिखाई पड़े जिन से वे अति सरल स्वभावी आर्य बहुत भयभीत हुए। इन आर्य पुरुषों में एक महा-पुरुष अन्य सब से अधिक तेजस्वी ज्ञानी और बुद्धि-

मान थे । इन्हें अपने पूर्व जन्म की स्मृति थी जिसकी सहायता से इन्होंने अन्य सब भोगभूमिजों के भय को दूर कर दिया और समझा दिया कि ये चन्द्र और सूर्य ज्योतिषी देवों के विमान हैं जो सदैव अपने २ समय पर उदय और अस्त होते रहते हैं । ये कोई नवीन और डरावनी वस्तु नहीं हैं । ज्योतिरांग जाति के कल्प-वृक्षों की ज्योति इनकी ज्योति से अधिक थी। इसी से ये दृष्टिगोचर नहीं होते थे। अब उन वृक्षों की ज्योति अति मन्द पड़जाने से ये दिखाई देने लगे हैं । इस प्रकार भय दूर हो जाने पर सर्व भोगभूमिज उसे विशेषज्ञ समझ कर अपना पथ-प्रदर्शक और शासक मानने लगे । उस महा पुरुष के मुख से अपना भय दूर करने वाले प्रिय वचन श्रवण करने और आगे को कर्मभूमि के प्रारम्भ हो जाने आदि का सारा भविष्य वृतान्त सुनने के कारण वे उसे "प्रतिश्रुति" नाम से पुकारने लगे । युग परिवर्तन के नियमों को यथार्थ रूप से जानने वाला यही महापुरुष वर्तमान अवसर्पिणी काल का सब से पहिला "कुलकर" या "मनु" है । इसी के समय से शासक और शास्य अर्थात् राजा और प्रजा का भेद और आवश्यक्ता पड़ने पर "राज-नीति" के कुछ नियम नियत करने का प्रारम्भ हुआ । उपर्युक्त मिती से पहिले

चन्द्र सूर्य दिखाई न पड़ने और इस लिये रात दिन का कोई भेद न होने से तिथि, पक्ष, मास आदि का किसी को भी कुछ ज्ञान न था और न कोई भोगभूमिज किसी विशेष नाम से नामाङ्कित था किन्तु सब ही छल कपट मायाचारादि दुर्गुणों से सर्वथा रहित अति सरल चित्त होने से केवल "आर्य" नाम से पुकारे जाते थे। अतः इसी प्रथम मनु या कुलकर के समय से "इतिहास काल" का प्रारंभ उपर्युक्त मिती आषाढ़ शु० १५ के सायंकाल से हुआ ॥

इस प्रतिश्रुत मनु के पश्चात् संख्यों वर्षों का अन्तर दे दे कर उपरोक्त नामवाले "सन्मति" आदि नाभिराय पर्यन्त १३ मनु एक दूसरे के पश्चात् और हुए जिन्हों ने शनैः शनैः कल्पवृक्षों का सामर्थ घटते जाने और अन्त में उनके नष्ट होते जाने पर अपने अपने जातिस्मरण (पूर्व जन्म की स्मृति) या अवधिज्ञान के बल से प्रजा को यथा आवश्यक जीवन का उपाय आदि बताकर उनकी सर्व आवश्यक्ताओं की यथायोग्य पूर्ति की। परस्पर के किसी झगड़े को मेटने के लिये शोक, निन्दा, और धिक्कार सूचक हा, मा, धिक ये तीन दण्ड नियत किये। चौदहवें कुलकर श्री नाभिराय के पश्चात् तृतीय काल ही में जन्म पाने से इन के

पुत्र और पौत्र श्री ऋषभदेव तीर्थंकर और भरतचक्रवर्ती भी पन्द्रहवें व सोलहवें कुल-कर कहलाये ॥

अथ मूल कथा निरूपण

(१) श्री ऋषभदेव के १० पूर्व जन्म

(आदि पुराण पर्व ४ से ११ तक)

१. मध्य लोक के बीचों बीच नृलोकान्तर्गत जम्बूद्वीप के ठीक मध्य में जो अतिशय ऊँचा-सुदर्शन नामक मेरुपर्वत है उसके पश्चिम-विदेह क्षेत्र में स्वर्ग-पुरी समान एक गन्धिला नाम का देश है। उसमें इन्द्रपुरी समान एक सिंहपुर नाम की नगरी में "श्रीषेण" नाम का एक राजा किसी अति प्राचीन समय में राज्य करता था। उसकी सुन्दरी नामक रानी के गर्भ से "जयवर्मा" और "श्रीवर्मा" नाम के दो पुत्र थे। छोटे पुत्र श्रीवर्मा पर माता पिता का अधिक स्नेह तथा उसी को युवराज-पद दिया देखकर और इस से अपनी भारी अवहेलना समझकर जयवर्मा को अत्यन्त वैराग्य उत्पन्न हुआ। अपने दुष्कर्मों और अभाग्य को धिक्कारता हुआ श्री स्वयंप्रभ मुनि के समीप मुनि-दीक्षा लेकर तपश्चरण करने लगा। नवीन-

दीक्षित होने से जयवर्मा ने एक दिन महीधर नामक विद्याधर को अपनी पूर्ण विभूति के साथ आकाशमार्ग में जाता देखकर उसी के समान विद्याधर कुल में जन्म पाने के लिये निदानबन्ध कर लिया और इसी विचार में अकस्मात् एक सर्प से डसा जाकर प्राण त्याग किये ॥

२. इसी जम्बूद्वीपस्थ पश्चिमी विदेह क्षेत्र के गन्धिला देश में जिसकी पूर्व दिशा में "देवमाल" (देवाद्रि) नामका वक्षार पर्वत, दक्षिण में "सीतोदा" नदी, पश्चिम में "उर्मिमालिनी" नामक विभंगा नदी और उत्तर में "नील" पर्वत है, ॐ उस देश के ठीक मध्य में सीतोदा नदी से नील पर्वत तक देश की चौड़ाई

ॐ गन्धिला देश की जो चौहद्दी यहां बताई गई है उसकी दिशाओं के नाम पूर्वादि जो कहे गये हैं वे हमारे भरतक्षेत्र के आर्य खण्ड की अपेक्षा से हैं। वास्तव में सर्व ही क्षेत्रों, खण्डों या देशों से सुदर्शन मेरु तो उत्तर दिशा में है और इसलिए सर्व क्षेत्रादि इस मेरु की दक्षिण दिशा में होने से विदेह क्षेत्र की अपेक्षा गन्धिला देश के पूर्व में "सीतोदा नदी", दक्षिण में "उर्मिमालिनी" नदी, पश्चिम में "नील" पर्वत, और उत्तर में देवमाल वक्षार पर्वत है।

की बराबर लम्बा एक विजयार्द्ध नामक पर्वत रजत समान स्वेतवर्ण का है। इस पर्वत पर दो समतल भूमि उत्तर श्रेणी और दक्षिण श्रेणी नाम से प्रसिद्ध हैं। उन दोनों श्रेणियों में विद्याधरों के रमणीय सुन्दर निवास स्थान और बड़े बड़े नगर हैं। उत्तर श्रेणी में इन्द्रपुरी को लज्जित करने वाली एक अलिका नाम की बड़ी सुन्दर नगरी है जिसके चारों ओर आकाश से बातें करने वाला एक ऊँचा कोट और कोट के गिरदागिर्द उज्वल जल से भरी हुई प्रफुल्लित कमलों से सुशोभित खाई है॥

किसी समय उस अलकापुरी का अधिपति "अतिवल" * नाम का विद्याधर था जिसकी "मनोहरा" नाम की सुशीला रानी के गर्भ से वह जयवर्मा मुनि का जीव वहां से शरीर त्याग कर अतिशय भाग्यशाली "महाबल" नामका पुत्र हुआ। सर्व कार्यों में कुशलता, युद्ध में वीरता, दान में उदारता, तथा बुद्धि, क्षमा, दया, धैर्य, सत्य, शौच आदि उसके स्वाभाविक गुण थे। पिता के विरक्त होकर मुनि-वृत धारण करलेने पर राजपद प्राप्त किया; बड़े विद्वान् और दीर्घदर्शी इसके चार

* यह अतिवल महाराजा सहस्त्रबल का पौत्र और शतवल का पुत्र था।

मन्त्री महामति, संभिन्नमति, शतमति और स्वयंबुद्ध थे जिन में से स्वयंबुद्ध मन्त्री बड़ा धर्मज्ञ और शुद्ध सम्यग्दृष्टी था और अन्य तीनों मिथ्यादृष्टि थे। धार्मिक दृष्टि से मतभेद होने पर भी स्वामी के हित साधन में वे चारों ही सदा उद्यत रहते थे और सर्व सामाजिक व राज प्रबन्धादि कार्यों में परस्पर मैत्री भावयुक्त मिलजुल कर काम करते थे। एक दिन महाबल का जन्म दिन आने पर वर्षगाँठ के महोत्सव के समय अवसर पाकर महाराज को धर्म्म में अधिक दृढ़ करने तथा सर्व सभा जनों पर सम्यक्धर्म का महत्व प्रकट करने के लिए स्वयंबुद्धने दयामूलक धर्म का लक्षण और स्वरूपादि निरूपण करके सर्व राज्यविभूति पाने और ऐसे शुभ महोत्सव का शुभ अवसर प्राप्त करने को पूर्वोपार्जित पुण्य का फल बताया तथा आगे को स्वर्ग व मोक्षफल प्राप्ति के लिए सम्यक्दर्शन पूर्वक यथाशक्ति सुचारित्र पालन करने की ओर सर्व उपस्थित मण्डली का चित आकर्षित किया। परन्तु अन्य तीनों जड़वादी, विज्ञानाद्वैतवादी और शून्यवादी मन्त्रियों ने अपने अपने पक्ष का समर्थन और स्वयंबुद्ध के वचनों का खण्डन करके राजा के सन्मुख सर्व उपस्थित सभाजनों से कहा कि वास्तव में जीव ही की कोई अलग सत्ता कभी किसी की दृष्टिगोचर

न होने से जब जीव पदार्थ ही कुछ न ठहरा तो पुण्य पाप का कर्ता कौन और उनके फल सुख दुःखादि कौन भोगे। तथा परलोक या स्वर्ग नरकादि क्या वस्तु रहीं; यह सब मिथ्या कल्पनाएँ हैं। इत्यादि नास्तिकवाद का पोषण और सत्यार्थ आस्तिकवाद का खण्डन करने पर स्वयंबुद्ध मन्त्री ने बड़ी बुद्धिमता के साथ अनेक युक्तियों तथा नय, प्रमाणों और कई प्रत्यक्ष उदाहरणों अर्थात् राजा अरविन्द, मणिमाली, शतबल और सहस्रबल की कथाओं द्वारा जीवतत्व की सिद्धि करके उन तीनों ही को निरुत्तर और अवाक् कर दिया जिस से सम्पूर्ण सभा सन्देह रहित होकर बड़ी सन्तुष्ट हुई और सभाधिपति राजा महाबल भी अति प्रसन्न हुए। सभा ने स्वयंबुद्ध की बड़ी प्रशंसा की ॥

कुछ दिन पश्चात् स्वयंबुद्ध मन्त्री सुदर्शन मेरु पर के अकृत्रिम चैत्यालयों की वन्दना करने गया। वहां उसे आदित्यगति और अरिंजय नाम के दो चारण ऋद्धिधारी अवधिज्ञानी दिगम्बर मुनियों के दर्शन हुए। श्री आदित्यगति के मुख से मन्त्री को ज्ञात हुआ कि "राजा महाबल भव्य है। इस भव से दशवें भव में तीर्थङ्कर पद पाकर निर्वाणपद प्राप्त करेगा। यह पूर्व भव में सिंहपुर नरेश श्रीषेण का

"जयवर्मा" नाम का बड़ा पुत्र था। अब इसकी आयु केवल एक मास की शेष है। आज प्रातःकाल उसने दो स्वप्न देखे हैं। पहिला स्वप्न आगामी काल में होनेवाले सुखों का सूचक है और दूसरा आयु अतिअल्प रहजाने का सूचक है।" इत्यादि वचन सुनकर और श्री मुनि की आज्ञानुसार स्वयंबुद्ध ने निज नगर आकर राजा को मुनिद्वारा जाना हुआ सारा वृतान्त सुनाया जिस से राजा महाबल को धर्म पर और भी अधिक दृढ़ श्रद्धान हुआ। आयु का अन्त जानकर यथाविधि समाधि मरण पूर्वक शरीर परित्याग करने का निश्चय किया। अष्ट दिन तक अष्टाह्निक महा-यज्ञ अपने उद्यान के जिनालय में बड़ी भक्ति के साथ कराया। पश्चात् अतिबल पुत्र को राज्य देकर और तुरन्त परमपूज्य "सिद्धकूट" चैत्यालय में जाकर सिद्ध पूजा की और गुरु की साक्षी पूर्वक आयु के अन्त तक के लिए सर्व प्रकार के आहार और शरीर से ममत्व का त्याग करदिया। स्वयंबुद्धि मन्त्री ही को अपना निर्यापकाचार्य बनाया। वीर शय्यासन धारण किया। वाह्याभ्यन्तर सर्व परिग्रह से ममता त्याग दी। चारों आराधना पूर्वक "प्रायोपगमन" नामक सन्यास धारण करलिया। इस प्रकार २२ दिन निराहार धर्मध्यान में बिताकर और परिणामों

की निरन्तर बढ़ती हुई विशुद्धि पूर्वक महाबल ने सुख से शरीर परित्याग किया ॥

३ महाबल का जीव विशुद्ध परिणामों से शरीर परित्याग कर के ईशान नामक दूसरे स्वर्ग के श्रीप्रभ नामक विमान में बड़ी ऋधि का धारक "ललितांग" नाम का उत्तम देव हुआ। यहां इसने लगभग एकसागरोपम काल तक दिव्य भोग भोगे। जब इस की आयु में ९ पल्योपम काल से कुछ अधिक समय शेष रहा तब एक स्वयंप्रभा नाम की देवी ने पूर्व की इसी नाम की देवी की आयु पूर्ण हो चुकने पर उसके स्थान पर जन्म लिया। ललितांग देव को यह अति प्रिय थी और इसे भी ललितांग से असाधारण अतिशय स्नेह था। ललितांग देव ने धर्मध्यान पूर्वक जब शरीर त्यागा उस समय स्वयंप्रभा की आयु में केवल ६ मास शेष थे। कुछ दिनों तक इसे ललितांग के वियोग का बड़ा शोक रहा। छह मास बीतने पर इसने भी धर्मध्यान पूर्वक शरीर छोड़ा, परन्तु अन्त समय में भी ललितांग का स्नेह इसके मन से न छूटा ॥

४. ईशान स्वर्ग से शरीर त्यागकर ललितांग देव तो इसी जम्बूद्वीपस्थ पूर्व-

विदेह क्षेत्र के पुष्कलावती देशान्तर्गत उत्पलखेट नगर में राजा वज्रबाहु और रानी वसुन्धरा का "वज्रजंघ" नाम का पुत्र हुआ। और स्वयंप्रभा देवी उससे लगभग ६ मास पश्चात उसी पूर्वविदेह क्षेत्र के पुष्कलावती देश की राजधानी पुंडरीकिणी नगरी में श्री यशोधर तीर्थङ्कर के पुत्र वज्रदन्त चक्री की महारानी लक्ष्मीमती के उदर से "श्रीमती" नाम की अतिशय सुन्दर पुत्री हुई। कई पूर्व जन्मों के संस्कार वश इसका विवाह "वज्रजंघ" के साथ हुआ। पिता वज्रबाहु और उनके साथ अपने सर्ग९८ पुत्रों के मुनिदीक्षा ग्रहण करलेने पर वज्रजंघ ने पिता का स्थान लिया। अपने मतिवर मंत्री, अकम्पन सेनापति, आनन्द पुरोहित और धनमित्र सेठ से इसे अति स्नेह था ॥

नोट—जिस समय वज्रजंघ का विवाह वज्रदन्त चक्री की पुत्री श्रीमती से हुआ उससे कुछ दिन पश्चात् वज्रजंघ की एक बहन अनुन्धरी का विवाह वज्रदन्त चक्री के पुत्र अर्थात् श्रीमती के भाई अमिततेज के साथ किया गया। इस अनुन्धरी का जीव कुछ जन्मों के पश्चात् श्री ऋषभदेव की (वज्रजंघ के जीवकी) "सुन्दरी" नाम की पुत्री हुई जो उनकी "सुनन्दा" नाम की स्त्री के गर्भ से जन्मी ॥

एक बार शष्प सरोवर के तटपर वज्रजंघ और श्रीमती ने अवधिज्ञानी श्री दमवर और सागरसेन चारण मुनियों को जो इनके लघु पुत्र थे नवधाभक्ति पूर्वक निरन्तराय शुद्ध आहार दिया। इस अवसर पर भाग्योदय से चार जंगली पशु सिंह, शूकर, वानर, और नकुल ने भी जातिस्मरण होजाने से हर्ष पूर्वक उस शुभदान की मन ही मन में बारम्बार अनुमोदना की। वज्रजंघ और श्रीमती दोनों ने आयुके अन्तमें अपने शय्यागृह में सुख पूर्वक शयन करते हुए सेवकों की भूलवश कृष्णागुरु की सुगन्धित धूप के धूम्र से मूर्छित होकर प्राण त्याग किये और मतिवर, अकम्पन, आनन्द और धनमित्र ने वज्रजंघ व श्रीमती के वियोग में अति शोकातुर होकर श्री दृढ़-धर्माचार्य के समीप मुनि दीक्षा ग्रहण करली ॥

९. वज्रजंघ और श्रीमती ने उत्तम सुपात्रदान के महान पुण्योदय से इसी जम्बूद्वीप के मध्य सुदर्शन मेरु की उत्तर दिशा में स्थित उत्तरकुरु नामक उत्तम भोगभूमि में जन्म पाया। सुपात्र दानानुमोदना के पुण्योदय से उन सिंह, शूकर, वानर और नकुल के जीवों ने भी अपनी अपनी आयु के अन्त में प्राण त्याग कर उसी भोगभूमि में मनुष्य जन्म पाया। स्वयंबुद्ध मंत्री के जीव ने अपनी तीसरी

पु॰

पर्याय में "प्रीतंकर" नाम का राजपुत्र होकर और फिर तपोबल से अवधिज्ञान और चारण ऋद्धि पाकर पूर्वजन्म के स्नेहवश महाबल के जीव के पास इस उत्तर कुरु भोगभूमि में आकर उसे और उसकी स्त्रीको धर्मोपदेश द्वारा शुद्ध सम्यग्दर्शन ग्रहण कराया। सिंह सूकरादि चारों प्राणियों के जीवोंको भी इस शुभ अवसर पर सम्यक् दर्शन प्राप्ति का आस्वाद प्राप्त हुआ। पश्चात् महान सुखपूर्वक वहां की तीन पल्योपम काल की आयु पूर्ण करके छहों ने शरीर परित्याग किया॥

६. वज्रजंघ का जीव भोगभूमि की तीन पल्योपम काल की आयु पूर्ण करके ईशान नामक द्वितीय स्वर्ग के श्रीप्रभ विमान में "श्रीधर" नामका ऋद्धिधारी देव हुआ। और श्रीमती का जीव भी सम्यग्दर्शन के महात्म से स्त्रीलिंग छेदकर उसी स्वर्ग के उसी विमान में 'स्वयंप्रभ' नाम का उत्तम देव हुआ। इसी प्रकार सिंह, शूकर, वानर, और नकुल के जीव भी उसी स्वर्ग में बड़ी बड़ी ऋद्धियों के स्वामी देव हुए। सिंह का जीव चित्रांगद विमान में "चित्रांगद" देव, शूकर का जीव नन्द नामक विमान में "मणिकुण्डल" देव, वानर का जीव नन्द्यावर्त विमान में "मनोहर" देव, और नकुल का जीव प्रभाकर विमान में "मनोरथ" देव हुए। और मतिवर, अकम्पन,

आनन्द और धनमित्र के जीव, जो क्रमसे वज्रजंघ के मंत्री, सेनापति, पुरोहित और सेठ थे, उग्र तपश्चरण के प्रभाव से समाधिमरण कर अधो ग्रैवेयिक में अहमिन्द्र हुए।

७. दूसरे स्वर्ग की आयु पूर्ण होने पर श्रीधर देव का जीव वहां से चय कर इसी जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्रमें महावत्स देश के सुसीमा नगराधीश सुदृष्टि की रानी सुन्दरनन्दादेवी के गर्भ से "सुविधि" नाम का प्रतापी सर्वकलानिधान पुत्र उत्पन्न हुआ। युवा होने पर अपने मातुल अभयघोष चक्री की पुत्री मनोरमा से विवाहित हुआ। वज्रजंघ की स्त्री श्रीमती का जीव जो दूसरे स्वर्ग में स्वयंप्रभ नामका देव था इसी राजपुत्र सुविधि की इस मनोरमा स्त्री के उदर से "केशव" नामका पुत्र हुआ। और सिंह शूकर वानर व नकुल के जीव जो उसी स्वर्ग में चित्रांगद मणिकुंडल, मनोहर और मनोरथ नामके उत्तम देव थे, ये चारों ही जीव स्वर्ग से चय कर उसी महावत्स देशमें राजपुत्र हुए।

सिंह का जीव महाराज विभीषण की रानी प्रियदत्ता से "वरदत्त" नाम का पुत्र हुआ। शूकर का जीव महाराज नन्दिषेण की रानी अनन्तमती के 'वरसेन' नामका पुत्र हुआ। वानर का जीव राजा रतिषेण की रानी चन्द्रमती के चित्रांगद

नाम का पुत्र हुआ। और नकुल का जीव राजा प्रभंजन की रानी चित्रमालिनी के 'प्रशान्तमदन' नामका पुत्र हुआ। इन चारों ही राज पुत्रों ने अपने अपने पिता के राज्य का राज्य-सुख भोगकर सुविधि के मातुल अभयघोष चक्री के साथ मुनि दीक्षा लेकर महान तप किया। परन्तु सुविधि ने अपने पिता का राज्य पाने के पश्चात अपने परम प्रिय पुत्र केशव के अति गाढ़ स्नेह वश मुनि दीक्षा न ली किन्तु अनुक्रम से श्रावक के ११ वीं प्रतिमा तक के उत्कृष्ट व्रत धारण कर कठिन तपश्चरण किया॥

८. सुविधि ने ११ वीं प्रतिमा तक के श्रावक के उत्कृष्ट व्रत शुद्ध भावों से पालन कर आयु के अन्त समय बाह्याभ्यन्तर सर्व परिग्रह रहित होकर और विधि पूर्वक समाधिमरण से शरीर त्याग करके १६ वें स्वर्ग में "अच्युतेन्द्र" हुआ। पिता के पश्चात् केशव ने भी मुनिव्रत सम्बन्धी अनेक उग्रोग्र तप करके उसी १६ वें अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र पद पाया। सिंहादि के जीव वरदत्त आदि चारों मुनि भी अपनी २ आयु के अन्त में समाधिमरण पूर्वक शरीर परित्याग कर उसी स्वर्ग में इन्द्र के समान ऋद्धिधारक सामानिक जाति के देव हुए॥

९, सोलहवं स्वर्ग में अच्युतेन्द्र ने २२ सागरोपम काल तक महान सुख भोग कर आयु के अन्त में धर्म ध्यान पूर्वक शरीर परित्याग किया और इसी जम्बूद्वीपस्थ पूर्व-विदेह के पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी में राजा वज्रसेन तीर्थंकर की रानी श्रीकान्ता के "वज्रनाभि" नाम का पुत्र हुआ। इसके शरीर का वर्ण ताये स्वर्ण समान देदीप्यमान था। सिंह शूकर वानर और नकुल के जीव जो वरदत्तादि राजा होकर उसी १६ वें स्वर्ग में सामानिक देव हुए थे वे भी धर्म ध्यान पूर्वक शरीर त्याग कर उन्हीं राजा वज्रसेन और रानी श्रीकान्ता के क्रम से विजय, वैजयन्त, जयन्त, और अपराजित नाम के पुत्र वज्रनाभि के लघु भ्राता हुए। तथा इस वज्रनाभि की पूर्व पर्याय (वज्रजंघ) के मतिवर मन्त्री, अकम्पन सेनापति, आनन्द पुरोहित, और धनमित्र सेठ के जीव जो अधोग्रैवेयिक में अहमिन्द्र हुए थे वे भी क्रम से उन ही राजा रानी के सुबाहु, महाबाहु, पीठ, और महापीठ नामक प्रभावशाली पुत्र (वज्रनाभि के लघु भ्राता) उत्पन्न हुए। श्रीमती का जीव जो राजा सुविधि का पुत्र केशव था और १६ वें स्वर्ग में अच्युतेन्द्र हुआ था वहां से चयकर उसी पुंडरीकिणी नगरी में सेठ कुवेरदत्त की अनन्तमती स्त्री से धनदेव नाम का भाग्यशाली पुत्र हुआ।

जब राजकुमार वज्रनाभि के पिता श्री वज्रसेन तीर्थंकर ने अपना राज्यभार वज्रनाभि को देकर स्वयं एक सहस्र अन्य राजाओं सहित मुनिदीक्षा ग्रहण करली तो कुछ ही समय पीछे वज्रनाभि की आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। पश्चात् दिग्विजय द्वारा पुष्कलावती देश के छहों खण्ड की सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने अधिकार में लाकर ३२ सहस्र मुकुटबन्ध राजाओं, १४ रत्नों, ९ निधियों आदि बहु सम्पत्ति का अधिपति चक्रवर्ति राजा हुआ, और श्रीमती का जीव धनदेव (सेठ कुबेर दत्त का पुत्र) चक्रवर्ती के १४ रत्नों में से एक गृहपति रत्न हुआ। दीर्घकाल तक चक्रवर्ति पद के महान सुख भोग कर वज्रनाभि चक्री ने विषय भोगों से अत्यन्त विरक्त होकर अपने पुत्र वज्रदन्त को राज्य सिंहासन देदिया और विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित, सुबाहु, महाबाहु, पीठ, और महापीठ, इन आठों लघु भ्राताओं और धनदेव गृहपति तथा लगभग १६ सहस्र मुकुटबन्ध राजाओं और एक सहस्र पुत्रों सहित अपने पिता श्री वज्रसेन तीर्थंकर के समीप जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करली। तत्पश्चात् पंच महाव्रत, पंचसमिति और तीनों गुप्तियों का शुद्ध भावों से पालन करते हुए अपने पिता ही के निकट तीर्थंकर पद प्राप्ति की

अद्वितीय कारणभूत दर्शनविशुद्धि आदि १६ कारण भावनाओं का उसने वार-म्बार चिन्तवन किया। उग्रोग्र तपश्चरण द्वारा बुद्धि ऋद्धि के १८ भेदों में से निर्मल कोष्ठबुद्धि, बीजबुद्धि, पदानुसारिणी बुद्धि और सम्भिन्नश्रोत्र बुद्धि, ये चार ऋद्धियां तथा क्रिया, विक्रिया, तप, बल आदि ऋद्धियों के भेदों में से भी कई कई प्रकार की ऋद्धियां उसे प्राप्त हो गईं। विशुद्ध परिणामों द्वारा उपशम श्रेणी मांड़कर और मोहनीय कर्म का उपशम करता हुआ ११ वें गुणस्थान तक पहुँच कर अन्तमुहूर्त में फिर सप्तम गुणस्थान में आगया। तदन्तर द्वादशांग पाठी श्रुतकेवलि होकर आयु के अन्त समय में "**श्रीप्रभ**" पर्वत पर सिंहनिष्क्रीडित व्रत पूर्वक प्रायोपगमन संन्यास (अन्यनाम-प्रायोपवेशन, प्रायेणोपवेशन, प्रायेणोपगम, प्रायेणोपगमन, प्रायेणापगम संन्यास) धारण करके शरीर और आहार से सर्वथा ममत्व त्याग कर दिया। एक मास बीतने पर अब एक बार फिर उपशम श्रेणी मांडकर ग्यारहवें गुणस्थान में पहुँचा और "पृथक्त्व वितर्क विचार" नामक शुक्लध्यान का प्रथम चरण पूर्णकर मोहनीय कर्म का सम्पूर्ण उपशम किया। अतिशय विशुद्ध और पूर्ण

निर्मल परिणाम युक्त अन्तर्मुहूर्तकाल इस गुणस्थान में रहकर शरीर परित्याग कर दिया।

नोट १—सिंहनिष्क्रीडित व्रत—यह व्रत जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट भेदों से तीन प्रकार का है। जघन्य में एक धारणा ६० उपवास, और बीच बीच में २० पारणे (एकाशना) किये जाते हैं। इस में सब ८१ दिन लगते हैं। मध्यम में एक धारणा, १५३ उपवास और बीच बीच में ३३ पारणे किये जाते हैं। इस में सब १८७ दिन लगते हैं। और उत्कृष्ट में एक धारणा, ४९६ उपवास और बीच बीच में ६१ पारणे किये जाते हैं। इस में सब ५५८ दिन लगते हैं। (हरिवंश पुराण सर्ग ३४। ७७-८३)।

नोट २—जिस संन्यास-मरण या समाधिमरण में न तो किसी दूसरे से किसी प्रकार की भी अपनी टहल या सेवा कराई जाय और न स्वयम् ही की जाय उसे "प्रायोपगमन संन्यास" कहते हैं (गो० कर्म० गा० ६१)।

१०. श्री वज्रनाभि मुनि ने प्रायोपगमन संन्यास पूर्वक अतिशय विशुद्ध भाव-युक्त शरीर त्याग कर पंचानुत्तर विमानों में से मध्य के "सर्वार्थसिद्धि" नामक विमान में अहमिन्द्र पद प्राप्त किया। इसी प्रकार वज्रनाभि के उपरोक्त आठों लघु भ्राताओं और धनदेव गृहपति ने भी उग्रोग्र तपश्चरण द्वारा अनेक अशुभ कर्म-प्रकृतियोंकी निर्जरा कर अपने अपने पुण्यकर्मोदय से उसी "सर्वार्थ

सिद्धि" विमान में अहमिन्द्रपद पाया । ३३ सागरोपम काल पर्यन्त वहां के इन्द्रियविषय रहित अलौकिक और अनुपम सुखों का अनुभव किया ।

नोट १—श्री ऋषभदेव के उपर्युक्त १० पूर्व जन्मों के नाम (१) जय वर्मा (२) महाबल (३) ललिताङ्गदेव (४) वज्रजंघ (५) भोगभूमिज आर्य (६) श्रीधर देव (७) सुविधिराज (८) अच्युतेन्द्र (९) वज्रनाभिचक्री (१०) सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र। इन १० से अगले ११वें भव में "श्री ऋषभ" होकर १२वें भव में निर्वाणपद पावेंगे॥

नोट २—श्री ऋषभदेव के पूर्व जन्मों के पूर्वोक्त १० मुख्य साथियों की भवावली:—

१. (१) स्वयंबुद्ध महाबल का सम्यग्दृष्टी मंत्री जिसने महाबल के प्रायोपगमन संन्यास पूर्वक प्राणोत्सर्ग करने पर मुनि दीक्षा ग्रहण करली थी (२) पहिले स्वर्ग के स्वयंप्रभ विमान में मणिचूलदेव (३) जम्बूद्वीपस्थ पूर्वविदेह के पुष्कलावती देशकी पुण्डरीकिणी नगरी नरेश प्रियसेन की रानी "सुन्दरी" का प्रीतङ्कर नामक ज्येष्ठपुत्र (जिस ने अवधिज्ञानी और चारण ऋद्धि धारी मुनि होकर और उत्तरकुरु भोगभूमि में जाकर वज्रजंघ और श्रीमती के जीवों को शुद्ध सम्यग्दर्शन ग्रहण कराया था), (४) निर्वाणपद ॥

२. (१) धनश्री (यह धातकीद्वीप सम्बन्धी "मन्दरमेरु" के पश्चिम विदेह में गन्धिला देशस्थ पलाशपर्वत ग्राम निवासी "देविल" गृहस्थी की पुत्री थी), (२) निर्नामिका (यह अपने पूर्वजन्म के देश ही में पाटली ग्राम निवासी एक वणिक की पुत्री थी; आदि पु० पर्व ८। १८५-१८८), (३) स्वयंप्रभा देवी (ललितांगदेव की देवांगना), (४) श्रीमती (वज्रजंघ की स्त्री), (५) भोगभूमिजा (भोगभूमिज आर्य की पत्नी, (६) स्वयंप्रभदेव (श्रीधरदेव का साथी देव उसका मित्र), (७) केशव (सुविधिराज का पुत्र), (८) १६ वें स्वर्ग में प्रतीन्द्र (अच्युतेन्द्र का नायब इन्द्र), (९) धनदत्त (वज्रनाभिचक्री का गृहपति रत्न), (१०) अहमिन्द्र (सर्वार्थसिद्धि में श्री ऋषभदेव के जीव अहमिन्द्र का साथी)। अगले ग्यारहवें जन्म में हस्तिनापुरी नरेश "श्रेयांस" (सोमप्रभ का भाई और दान पद्धति का नायक) होकर १२ वें भव में निर्वाण पद॥

३. (१) राजा अतिगृद्ध (यह जम्बूद्वीपस्थ पूर्वविदेह के वत्सकावती देश की प्रभाकरी नगरी का एक अति विषयभोगासक्त राजा था), (२) चतुर्थ नरक में नारकी (३) पूर्व जन्म की अपनी प्रभाकरी नगरी के समीपस्थ पर्वत पर सिंह (इसने प्रभा

करी नरेश प्रीतिवर्द्धन के द्वारा अवधिज्ञानी श्री पिहितास्रव मुनि को निरन्तराय आहार दान होता देखकर जातिस्मरण होजाने से अति शान्त चित्त और सन्तोषी होकर श्रावक के व्रत ग्रहण कर लिये। फिर जन्म पर्यंत आहार विहार का त्याग कर समाधिमरण पूर्वक शरीरत्याग किया। १८ दिन निराहार रहा), (४) दूसरे स्वर्ग में दिवाकरप्रभ देव (ललितांगदेव का एक परिवार देव, आदि पु० पर्व ८। १९१--२१०) (५) मतिवर [वज्रजंघ का मंत्री], (६) अधोग्रैवेयिक में लगभग २८ सगरोपम काली आयु का धारक अहमिन्द्र (७), सुबाहु [वज्रनाभि चक्री का लघु-भ्राता], (८) अहमिन्द्र [सर्वार्थसिद्धि विमान में श्री ऋषभदेव के जीव अहमिन्द्र का साथी]। अगले नवें जन्म में "**भरत**" चक्रवर्ति होकर दशवें भव में निर्वाणपद ॥

४. (१) "प्रभाकरी" नगरी नरेश प्रीतिवर्द्धन का सेनापति, (२) उत्तरकुरु में भोगभूमिज आर्य, (३) दूसरे स्वर्ग में प्रभाकर देव (ललितांगदेव का एक परिवार देव); (४) अकम्पन (वज्रजंघ का सेनापति)' (५) अधोग्रैवेयिक में अहमिन्द्र, (६) महाबाहु (वज्रनाभि चक्री का लघुभ्राता), (७) सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्र आठवें भव में "बाहुबलि" होकर नवें भव में निर्वाण पद ॥

५. (१) "प्रभाकरी" नरेश प्रीतिवर्द्धन का मन्त्री, (२) उत्तरकुरु-भोगभूमिज (३) दूसरे स्वर्ग में कनकप्रभदेव, ललितांग देव का परिवार देव, (४) आनन्द (वज्रजङ्घ का पुरोहित), (५) अधो ग्रै० में अहमिन्द्र, (६) पीठ (वज्रनाभि का लघु भ्राता), (७) सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र। अगले आठवें भव में भरतचक्री का लघुभ्राता "वृषभसेन" श्री ऋषभदेव भगवान का प्रथम गणधर होकर नवें भव में निर्वाण पद।

६. (१) "प्रभाकरी" नरेश राजा प्रीतिवर्द्धन का पुरोहित, (२) उत्तरकुरु-भोगभूमिज, (३) द्वितीय स्वर्ग में प्रभंजन देव (ललितांग देव का एक परिवारदेव), (४) धनमित्र (वज्रजंघ का राज्यश्रेष्ठि), (५) अधोग्रै० में अहमिन्द्र, (६) महापीठ (वज्रनाभिचक्री का लघुभ्राता), (७) सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र। आठवें भव में भरत चक्री का लघु भ्राता "अनन्तविजय" (श्री ऋषभदेव भगवान का गणधर) होकर नवें भव में निर्वाण पद।

७. (१) उग्रसेन (जम्बू द्वीपस्थ पूर्व विदेह क्षेत्र के पुष्कलावती देश की हस्तिनापुरी में रहने वाले सागरदत्त नाम के वैश्य का एक क्रोधी मायाचारी और वेश्या लम्पटी पुत्र. आदि पुराण पर्व ८। २२२-२२६). (२) सिंह (जिसने वानर, शूकर

और नवल के साथ साथ वज्रजंघ और श्रीमती द्वारा दिये गये आहारदान की अनुमोदना की थी), (३) भोगभूमिज मनुष्य (वज्रजंघ श्रीमती के जीवों का साथी भोगभूमिज), (४) दूसरे स्वर्ग में चित्रांगद देव (श्रीधरदेव का साथी मित्रदेव), (५) वरदत्त राजा (जिसने सुविधिराज के मामा अभयघोष चक्री के साथ मुनि-दीक्षा ली), (६) १६ वें अच्युत स्वर्ग में सामानिक देव, (७) वज्रनाभि चक्री का लघु भ्राता विजय, (८) सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्र। नवें भव में भरतचक्री का लघु भ्राता "**महासेन**" (श्री ऋषभदेव भगवान का गणधर) होकर १०वें भव में निर्वाणपद।

८. (१) हरि वाहन (विजयपुर नरेश महानन्द का एक महामानी पुत्र, आदि पु० पर्व ८। २२७-२२९), (२) शूकर (वज्रजंघ के दिये आहार दान का अनुमोदक) (३) भोगभूमिज मनुष्य, (४) दूसरे स्वर्ग में मणिकुण्डल देव (श्रीधर देव का साथी) (५) वरसेन राजा [सुविधिराजके मामाके साथ दीक्षालैने वाला], (६) १६वें स्वर्ग में सामानिक देव, (७) वज्रनाभि चक्री का लघु भ्राता वैजयन्त (८) सर्वार्थ सिद्धि

में अहमिन्द्र। अगले नवें भव में भरत चक्री का लघु भ्राता "श्रीषेण" होकर १० वें भव में निर्वाण पद।

९. (१) नागदत्त [धन्यपुर निवासी कुबेर नामके वैश्यका एक महा मायाचारी पुत्र, आदि पु० पर्व ८। २३०-२३३ (२) वानर [वज्रजंघ द्वारा दिये गये आहारदान का अनुमोदक], (३) भोगभूमिज मनुष्य, (४) दूसरे स्वर्ग में मनोहर नामक देव [श्रीधर देव का साथी], (५) चित्राङ्गद राजा [सुविधिराज के मामा के साथ मुनिदीक्षा लेनेवाला], (६) १६वें अच्युत स्वर्ग में सामानिक देव, (७) वज्रनाभि चक्री का लघु भ्राता जयन्त, (८) सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र। अगले ९ वें भव में भरतचक्री का लघु भ्राता "गुणसेन" [गणधर] होकर १० वें भव में निर्वाण पद।

१०. (१) लोलुप [सुप्रतिष्ठित उत्पलखेट नामक नगरमें पुआ आदि बेचनेवाला अति धनलोलुपी एक छोटा सा हलवाई], (२) न्योला [वज्रजंघ द्वारा दिये गये आहारदान का अनुमोदक], (३) भोगभूमिज मनुष्य, (४) द्वितीय स्वर्ग में मनोरथ नाम का देव [श्रीधर देव का साथी], (५) राजा प्रशान्त मदन [सुविधिराज

के मातुल के साथ मुनिदीक्षा लेनेवाला राजा], (६) १६वें स्वर्ग में सामानिक देव, (७) वज्रनाभि का लघु भ्राता अपराजित (८) सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र। अगले ९वें भव में भरतचक्री का छोटा भाई "जयसेन" होकर १०वें भव में निर्वाण पद।

(२) श्री ऋषभदेव का गर्भ महोत्सव

(आदि पुराण पर्व १२)

वर्तमान अवसर्पिणी (हुंडावसर्पिणी) काल के ६ विभागों में से जब "सुषमा दुःषमा" नामक तृतीय विभाग के दो कोड़ा कोड़ी सागरोपम काल में से केवल एक पल्योपम काल का आठवां भाग शेष रहा तब "प्रतिश्रुति" आदि नाभिराय पर्यन्त १४ कुलकर या मनु एक दूसरे के पश्चात् यथा समय उत्पन्न हुए जिनके नाम और आयु आदि का वर्णन पहिले किया जा चुका है। इन ही १४ वें कुलकर श्री नाभिराय की धर्मपत्नी का नाम "श्री मरुदेवी" था *। तृतीय काल के लगभग

*श्री मरुदेवी—ये जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र के प्रथम तीर्थङ्कर के पिता की जुगलिनी थीं जो सौधर्मेन्द्र द्वारा लाई जाकर श्री नाभिराय को विवाही गई। इसी प्रकार इस भरतक्षेत्र के प्रथम तीर्थङ्कर के पिता श्री नाभिराय की जुगलिनी इन्द्र द्वारा ऐरावत क्षेत्र पहुंचाई जाकर वहां के प्रथम तीर्थङ्कर के पिता को

अन्त में कल्प वृक्षों के नष्ट हो जाने पर इन ही पुण्यात्मा दम्पति के महान पुण्योदय से प्रेरित होकर और अपने अवधिज्ञान द्वारा यह जानकर कि यह पुण्याधिकारी दम्पति वर्तमान अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर के माता पिता होनहार हैं सौधर्मेन्द्र ने अपने आज्ञाकारी देवों द्वारा १२ योजन लम्बी और ९ योजन चौड़ी स्वर्गपुरी समान अनेक शोभायुक्त और अति रमणीक "अयोध्यापुरी" की रचना कराई। वर्तमान अवसर्पिणी काल में हमारे आर्यखण्ड की यही सब से पहली या सब से प्राचीन नगरी है जो प्राकृतिक ऐतिहासिक काल ॐ के लगभग प्रारम्भ में रची गई। यह दिव्य नगरी कोट, खाई, राजमन्दिर, राज्यसिंहासनादि सर्व सुख सामग्री युक्त बड़ी मनोहर रची गई। इन्द्राज्ञानुसार शुभ मुहूर्त में पुण्याहवाचन मन्त्रादि पूर्वक बड़े हर्ष और उत्सव के साथ इस देवोपनीत नगरी को महाराज

दिखाई गई (देखो "चर्चा के ग्रन्थ" नामक भाषा ग्रन्थ हस्तलिखित, नं० ५०, पृ० १३६-१४४, नया मन्दिर, देहली)।

ॐ देखो पृष्ठ २४ पर शीर्षक नं० (८)।

नाभिराय का निवासस्थान बनाया गया और उसी दिन से उनके राजभवन में नित्यप्रति तीन बार रत्नवर्षा कुवेर द्वारा होती रही। इस शुभ दिन से पूरे ६ मास पश्चात् श्रीमरुदेवी ने शुभ तिथि "आषाढ़ कृ० २ उत्तराषाढ़ नक्षत्र" की रात्रि के अन्तिम पहर में श्री तीर्थंकर भगवान के गर्भ में आने के सूचक १६ शुभ स्वप्न देखे जिनका अलग अलग शुभ फल उनके प्राणपति श्री नाभिराय ने अपने अवधिज्ञान द्वारा पूर्णरूप से जान कर श्री मरुदेवी को सुनाया। और कहा कि वज्रनाभि चक्रवर्ती का जीव सर्वार्थसिद्धि विमान से अपनी ३३ सागरोपम कालकी आयु पूर्ण करके गत रात्रि में तुम्हारे गर्भ में आया है। यह सुन कर उन्हें परमहर्ष प्राप्त हुआ। इन्द्रादिक देवों ने भी यहां आकर बड़े हर्ष पूर्वक भगवान का "गर्भ महोत्सव" किया। उसी दिन से श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, और लक्ष्मी इन षट्कुमारिका देवियों ने माता का गर्भशोधन किया और क्रम से उनकी श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, और लक्ष्मी को अर्थात् शोभा, लज्जा, धैर्य, यश, प्रबोध और वैभव को बढ़ाया। सीपी के सम्पुटमें मोतीके समान माता के गर्भाशय में नाभिकमल पर स्थित भगवान का शरीर असाधारण सुखपूर्वक पोषित और वृद्धित होता

रहा। ५६ दिक्कुमारी देवियां * अपने अपने नियोगानुसार रात दिन माता की टहल सेवा करती रहीं जिससे माता के गर्भ का सम्पूर्ण समय अतिशय प्रसन्नता, हर्ष, और आनन्द के साथ धर्म चर्चा पूर्वक व्यतीत हुआ। गर्भ के नवम मास में वे देवियां अतिशय बुद्धिवर्द्धक कूट श्लोकों, गूढ़ प्रश्नोत्तरों और अनेक अन्तरलापिका, प्रहेलिका, वहिर्लापिका, आदि द्वारा माता का चित्त विशेष रूप से प्रसन्न रखती थीं। पूर्व जन्मों के उत्तम संस्कार और तपो बल से भगवान को गर्भावस्था ही से मति, श्रुति और अवधि, ये तीन ज्ञान प्राप्त थे। भगवान के गर्भवास के समय अन्य स्त्रियों के समान माता का शरीर न तो कृश, पीत या पीड़ित हुआ, न उदर वृद्धि हुई, न

* तीसरे "पुष्कर" नामक द्वीप के मध्य जिस प्रकार मानुषोत्तर पर्वत वलयाकार है ठीक उसी प्रकार ग्यारहवें और तेरहवें "कुण्डलवर" और "रुचकवर" नाम के दो द्वीपों के मध्य भाग में कुण्डलगिरि व रुचकगिरि नाम के दो पर्वत हैं। इनमें से कुण्डलगिरि की पूर्वादि चारों दिशाओं के २० कूटों में से १६ में बसने वाले देवों की १६ देवांगना, और रुचकगिरि की चारों दिशाओं के ४४ कूटों में से ४० में बसने वाली ४० देवांगना, एवं सर्व ५६ दिक्कुमारी देवांगना हैं, जिन के अलग अलग नाम व कार्यादि जानने के लिये देखो श्री त्रिलोकसार, गाथा ९४५--९५६॥

त्रिवली भंग हुई और न स्तनों के मुख पर कालिमा आई। उनके शरीरांग और मुख की आकृति आदि सर्व प्रकार से सर्वांग सुन्दर बने रहे।

जिस समय भगवान ऋषभदेव माता के गर्भ में आये उस समय सुषमादुःषमा नामक तीसरे काल में कई वर्षाधिक ८४ लक्ष पूर्व शेष थे। †

(३) भगवान ऋषभदेव का जन्म महोत्सव और बाल-विनोद

(आदि पु० पर्व १३, १४)

भगवान ऋषभदेव को गर्भ में आये ९ मास और ७ दिवस बीतने पर शुभ मिती

---

† श्री ऋषभदेव के निर्वाण समय से ३ वर्ष ८॥ मास पीछे "सुषमादुःषमा" नामक चतुर्थकाल का प्रारम्भ मिती कार्तिक कृ० १ से हुआ। उनकी आयु लगभग ८४ लक्ष पूर्व की थी। यह ८४ लक्षपूर्व यदि जन्म तिथी से माने जावें तो उनकी आयु स्थूल रूप से १ मास २५ दिन घाट ८४ लक्ष पूर्व की थी और यदि गर्भ तिथि से माने जावें जैसा कि प्रायः पूर्वाचार्यों ने माना है तो उनकी आयु ४ मास १८ दिन घाट ८४ लक्ष पूर्व की थी, अर्थात् ५९२७०३९९९९९९९९९९९९९९९ वर्ष, १० मास, ५ दिवस की, या ५९-२७०३९९९९९९९९९९९९९९९९ वर्ष, ७ मास १२ दिवस की थी।

चैत्र कृ० ९ के दिन, प्रातःकाल सूर्योदयके समय उत्तराषाढ़ नक्षत्रके अन्तिम पाद अभिजित नक्षत्र और ब्रह्म महायोग में मति, श्रुत, अवधि, इन तीनों ज्ञान युक्त "श्री ऋषभदेव" भगवान का जन्म हुआ। जिस प्रकार बिना तार की तारबर्क़ी द्वारा Wireless Telegraphy द्वारा) विद्युत लहर सर्वत्र व्याप्त होकर अभीष्ट स्थान पर के यन्त्रों के विशेष पुर्जे स्वयं चलायमान हो जाते हैं ठीक उसी प्रकार जिस समय भगवान का जन्म हुआ उस समय प्राकृतिक रीति से त्रिलोक भर में एक ऐसी आनन्दभरी विद्युत लहर फैली जिससे प्राणी मात्र को (नारकी जीवों तक को) क्षण भर के लिये अपूर्व साता उत्पन्न हुई और इन्द्रादिक देवों के आसन अकस्मात् कम्पायमान हुए। कल्पवासी देवों के विमानों में स्वयं घण्टा बजने लगा। ज्योतिषियों के विमानों में स्वयं सिंहनाद होने लगा। व्यन्तरों के आवासों में भेरी बजने लगी और भवनवासी देवों के भवनों में शंखध्वनी होने लगी। इन अकस्मात् होने वाले चिह्नों से सर्व इन्द्रादिक देवों ने अपने अपने अवधिज्ञान द्वारा जान लिया कि अयोध्यापुरी में वर्तमान अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर भगवान का जन्म हुआ है। उसी समय वे सब अपने अपने विमान और वाहनों पर

चढ़कर बड़ी धूम धाम से अपनी सप्त प्रकारी सेना सहित अयोध्यापुरी में आये। भक्तिपूर्वक नगर की तीन प्रदक्षिणा दीं। सौधर्मेन्द्र की शची ने बड़े हर्ष के साथ गुप्तरूप से प्रसूतिगृह में जाकर भगवान और भगवान की माता के दर्शन किये। तीन प्रदक्षिणा लेकर नमस्कार पूर्वक उनकी स्तुति की। माता को मायामय निद्रा में सुलाकर भगवानको अपनी गोदमें उठा लिया और माताकी गोदमें मायामय एक अन्य बालक सुला दिया। बड़ी भक्ति और विनय के साथ भगवान को गोद में लिये हुए वह इन्द्राणी इन्द्रके समीप पहुँची। अष्ट-मंगल द्रव्यों को लिये हुए दिक्कुमारी देवियां भी सर्वप्रकार के उत्तमोत्तम मंगलों को देनेवाले उन मंगल स्वरूप भगवानके आगे आगे गईं। इन्द्र ने भगवान के दर्शन कर अपना जन्म सफल माना और बड़ी विनय से अपनी गोद में उन्हें लेकर उनकी स्तुति की। अपनी सवारी के ऐरावत* हाथी पर

*१६ स्वर्गों के प्रत्येक इन्द्र की सवारी के हाथी का नाम ऐरावत है। यह हाथी पशु जाति का नहीं होता किन्तु स्वर्गवासी देवों के इन्द्र, प्रतीन्द्र, लोकपाल, त्रायस्त्रिंशत, सामानिक, अंगरक्षक, परिषद्, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक, इन ११ भेदों में से "अनीक" नामक जाति के देवों में से ऐरावतनामक देव; जिस का नियोग इन्द्र की सवारी का हाथी बनने का है, आवश्यकता के समय अपनी

आरूढ़होकर और अन्य इन्द्रादिक देवों को संकेत कर सुदर्शन मेरुकी ओर चल दिया। मार्ग में भगवान के शिर पर ईशानेन्द्र ने छत्र लगाया। सनत्कुमार और माहेन्द्र ने चमर ढोले। इस प्रकार नृत्य गानादि पूर्वक मेरुगिरि पर पहुंचे। सुमेरु पर के पांडुक बनमें स्थित १०० योजन लम्बी, ५० योजन चौड़ी और ८ योजन मोटी अर्द्धचन्द्राकार महा पवित्र पांडुक शिला पर रक्खे हुए तीन सिंहासनों में से बीच के सिंहासन पर भगवान को पूर्वमुख विराजमान करके क्षीरोदधि नामक पंचम समुद्र से १००८ स्वर्णकलशों में अगणित देवों

वैक्रियक शक्ति के बल से हाथी बन जाता है। भगवान के जन्मोत्सव के समय उनकी सवारी के लिये सौधर्मेन्द्र की आज्ञा से ऐरावत देव एक लक्ष महायोजन के विस्तार का हाथी बन जाता है। उस समय उस के १०० मुख होते हैं। प्रत्येक मुख में ८ दांत होते हैं। प्रत्येक दन्त पर १ सरोवर होता है। प्रत्येक सरोवर में १२५ कमलिनी (कमल समूह या कमल लता) होती हैं। प्रत्येक कमलिनी में २५ कमल और प्रत्येक कमल में १०८ दल (पत्र) होते हैं। प्रत्येक दल पर एक एक देवाङ्गना (अप्सरा) नृत्य करती है। इस प्रकार सब कमल दल $100 \times 8 \times 1 \times 125 \times 25 \times 108 =$ २७ करोड़ होते हैं जिन पर २७ करोड़ अप्सरा नृत्य करती हैं ॥

द्वारा लाये हुए पवित्र जलसे भगवान का अभिषेक यथाविधि बड़े उत्सव के साथ किया गया। जिस समय सौधर्मेंद्र और ऐशानेन्द्र स्वच्छ जलधारा भगवान के मस्तक पर डालते थे सनत्कुमार और माहेन्द्र ये दो इन्द्र भगवान के शिर पर चमर ढोलते थे और शेष इन्द्रादिक देव बड़े हर्ष के साथ उछलते कूदते गातेबजाते जयजय-कारकी आनन्द ध्वनिसे आकाश को गुँजा रहे थे। अभिषेक किया समाप्त होने पर इन्द्रादिक देवों ने भगवान के न्हवन के सुगंधित जलको (गन्धोदक को) अपने अपने मस्तक पर लगाया। सबने मिलकर अष्टद्रव्य से भगवान का पूजन किया। इन्द्रानी ने वस्त्राभूषणादि से उन्हें अलंकृत किया। इन्द्र ने भगवान के उस समय के अद्भुत रूपको दो नेत्रों से देखते देखते तृप्त न होकर वैक्रियक शक्ति द्वारा अपने एक सहस्र नेत्र करलिये। भगवान के यथार्थ गुणवाचक १००८ नामोच्चारण करकरके बड़ी भक्ति से बारम्बार स्तुति की। तदन्तर अतिशय प्रसन्नता पूर्वक सर्व इन्द्रादिक देव पूर्ववत नृत्य गानादि महोत्सव के साथ अयोध्यापुरी में लौट आये। इन्द्रानी ने माता की मायामय निद्रा दूर करदी। मायामय बालक को अदृष्ट करके भगवान को माता पिता को सौंप दिया। पश्चात् उनकी स्तुति करके और भगवान

का जन्माभिषेक मेरुगिरि पर किये जाने की सारी कथा सुनाकर मातापिता को परम हर्षित किया। तदनन्तर इन्द्र की सम्मति से बड़ी विभूति और उत्सव के साथ अन्तःपुर और नगर निवासियों सहित श्री नाभिराय ने भी महा पुण्याधिकारी पुत्रका जन्मोत्सव मनाया। इस जन्मोत्सव में साढ़े बारह करोड़ जाति के देवोपनीत वादित्रों की अतिशय सुरीली और कर्णप्रिय तान पर इन्द्र ने अत्यन्त मनमोहन और चित्त को प्रसन्न करने वाला "आनन्द नाटक" दिखा कर तांडव नृत्य किया। आनन्द नाटक में सौधर्म इन्द्र ने भगवान के महाबलादि नव-पूर्वजन्मों और इस जन्म सहित सर्व १० जन्मों के चरित्र का दृश्य ज्यों का त्यों दिखाने वाले "दशावतार" अभिनय से सर्व उपस्थित मंडली को रिझाया। तत्पश्चात् इसी अवसर पर इन्द्र ने भगवान् को वृष-नायक अर्थात् पवित्र धर्म्म के मूल नायक जानकर अथवा गर्भावतरण के समय माता ने स्वप्न में स्वेत वृषभ को देखा था इसकारण उनका नाम "श्री वृषभदेव" रक्खा। तथा ये वर्तमान अवसर्पिणी के आदि (प्रथम) तीर्थंकर थे, इसलिये उनका नाम "श्री आदिनाथ" भी प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार "श्री ऋषभदेव" भगवान का जन्मोत्सव और नामकरण

संस्कार होजाने के पश्चात् इन्द्रादि देव सब अपने अपने स्थान चले गये। बालक वृषभ की सेवार्थ सौधर्म-इन्द्र कुछ देव देवियों को उनके पास छोड़ गया। भगवान् इन्द्रके दिये दिव्य वस्त्राभूषण पहनते थे और दिव्य ही आहार करते थे। शिशु ऋषभ की सेवा में रहनें वाले देवकुमार उनकी वय के समान ही यथा अवसर अपना रूप और वेषादि धारण करके उनके साथ अनेक प्रकार की बालक्रीड़ा और चित्त विनोद करते थे॥

---

(४) श्री ऋषभदेव के जन्म के १० अतिशय और अन्य विशेषताएं।

(आदि पु० पर्व १५। १-४६)

नित्य निरोग और जराआदि दोषों से रहित परमौदारिक अतिशय सुन्दर शरीर, सुगन्धित शरीर, पसेवरहित शरीर, मलमूत्ररहित शरीर, अतुल्य शारीरिक व आत्मिक बल, समचतुरस्र शरीर संस्थान, वज्रवृषभनाराच संहनन, शरीर में दुग्धवत स्वेत

अतिरिक्त तीसरा अनुगामी-वर्द्धमान अवधिज्ञान (पूर्व जन्म से साथ आने वाला और प्रति समय बढ़ता रहने वाला अवधिज्ञान) भी विद्यमान था। क्षायिक सम्यग्दृष्टी शिशु ऋषभ के पवित्र आत्मा में मतिज्ञान और श्रुतज्ञान भी अन्य मनुष्यों के समान साधारण न थे, किन्तु असाधारण रूपसे अतिशय बढ़ेचढ़े और अधिक स्वच्छ थे। इन ही तीनों प्रकारके ज्ञान की सहायतासे वे सर्व कलापूर्ण, समस्त विद्यानिधान, और लोक स्थिति आदि के ज्ञाता पूर्ण शास्त्रज्ञ थे। इसीलिए उन्हें किसी गुरु से किसी भी प्रकार की शिक्षा पाने की आवश्यक्ता न हुई। वे स्वयं ही सर्व के शिक्षक और गुरु थे। उन परमोत्तम शरीरी भगवान में बुद्धिनैपुण्य, दीर्घदर्शिता और कलाचातुर्य आदि अनेक गुण जन्म ही से विद्यमान थे।

भगवान ऋषभ मनोरंजनार्थ अनेक देवकुमारों के साथ जलक्रीड़ा और नृत्य गानादि भी करते थे।

(५) युवावस्था और विवाह संस्कार

(आदि पुराण पर्व १५। ५२--६६)

कुमार--अवस्था में २० लक्ष पूर्व (८४ लाख × ८४ लाख × २० लाख = १.४१

१२००००००००००००००००० वर्ष) व्यतीत होने पर भगवान ऋषभ जब युवावस्था को प्राप्त हुए तो पिता नाभिराय ने उनसे विवाह करने का परामर्श किया। तब सर्व अन्य मनुष्यों को अपने आदर्श चरित के अनुकूल चलाने व पूज्य पिता की आज्ञा न उलंघने के विचार से आपने केवल "ॐ" अक्षर का उच्चारण कर अपनी स्वीकृति दी। पिता ने सुरेन्द्रानुमति लेकर 'कच्छ' और 'महाकच्छ' इन दो राजाओं की दो महासती सुशीला और सुलक्षणा व रूपवती कन्याओं के साथ देवोकृत मंगलोत्सव पूर्वक शुभ मुहूर्त में विवाह कर दिया। इन कन्याओं का नाम 'यशस्वती' और 'सुनन्दा' था ॥

(६) भरत चक्रवर्ती का जन्म

(आदि पुराण पर्व १५। १००-२२४)

कुछ काल भोगोपभोग में बीतने पर एक रात्रि को सोते समय रात्रि अन्तिम पहर में "श्री ऋषभ भगवान" की बड़ी स्त्री "यशस्वती" ने ४ भ स्वप्न देखे—(१) मेरु पर्वत द्वारा सारी पृथ्वी का निगला जाना, (२)

चन्द्र सूर्य सहित मेरु पर्वत, (३) श्वेत हंसों सहित सरोवर; (४) चंचल लहरों सहित समुद्र--- इन चारों स्वप्नों का अपने पूज्य पति द्वारा यह फल सुनकर कि षटखंड पृथ्वी को अपने अधिकार में लानेवाला, तेज और कान्ति युक्त, मत्स्य आदि अनेक शुभ लक्षणों का धारक और इसी जन्म में संसारसमुद्र से पार उतरने वाला ऐसे महा प्रतापी पुत्र का जन्म तुम्हारे उदर से होगा, श्रीमती "यशस्वती" अपने हृदय में बड़ी हर्षित हुई। पश्चात् नव मास व्यतीत होने पर श्री ऋषभदेव की जन्म तिथि के समान ही चैत्र कृ० ९, उत्तराषाढ़ नक्षत्र, मीन लग्न, ब्रह्मयोग और धन राशि के चन्द्रमा युक्त शुभ मुहूर्त में महा तेजस्वी पुत्र का जन्म हुआ जिस का नाम "भरत" रक्खा गया।

पूर्वोक्त राजा अतिगृद्ध * का जीव जिसने क्रम से नरक, सिंह, द्वितीय स्वर्ग में दिवाकरप्रभ देव, वज्रजंघ का मंत्री मतिवर, ग्रैवेयिक विमान में अहमिन्द्र, वज्रनाभि चक्री का लघु भ्राता सुबाहु और सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्र, ये

* देखो पृष्ठ ४४ पर फुटनोट २ का नं० ४

हा। ५६ दिककुमारी देवियां * अपने अपने नियोगानुसार गत दिन माता की

अन्य सात जन्म धारण किये थे वही अपने नवें जन्म में यशस्वती के गर्भ से "भरत" उत्पन्न हुआ।

(७) भरत के ६६ लघु भ्राताओं और १ बहिन "ब्राह्मी" का जन्म

(आदि पुराण पर्व १६। १—५)

भरत के जन्म से कुछ समय पश्चात् क्रम से (१) वृषभ सेन, (२) अनन्त विजय, (३) महासेन (दीक्षित नाम अनन्त वीर्य), (४) अच्युत (दीक्षित नाम श्रीषेण), (५) वीर (दीक्षित नाम गुणसेन), (६) वरवीर (दीक्षित नाम जयसेन), ये छह पुत्र श्रीमती "यशस्वती" के गर्भ से जन्मे।

पूर्वोक्त राजा प्रीतिवर्द्धन के मन्त्री का जीव जिसने क्रम से उत्तरकुरु भोग भूमिज आर्य, द्वितीय स्वर्ग के कांचन विमान में कनकप्रभ नाम का देव, वज्रजङ्घ का पुरोहित आनन्द, ग्रैवेयिक में अहमिन्द्र, वज्रनाभि का लघुभ्राता पीठ और सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्र, ये अन्य छह जन्म धारण किये थे वही अपने

आठवें जन्ममें भरतका लघु सहोदर "वृषभसेन" हुआ ॥ राजा प्रीतिवर्द्धन के पुरोहित का जीव जिसने क्रम से उत्तरकुरु भोगभूमिज आर्य, द्वितीय स्वर्ग के रुचित विमान में प्रभंजनदेव, वज्रजङ्घ का राजश्रेष्ठी धनमित्र, ग्रैवेयिक में अहमिन्द्र, वज्रनाभि चक्री का लघुभ्राता महापीठ, और सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र, ये छह जन्म धारण किये थे वह अपने आठवें जन्म में वृषभसेन का लघु सहोदर "अनन्तविजय" हुआ।

वैश्यपुत्र उग्रसेन का जीव जिसने क्रम से सिंह, भोगभूमिज आर्य, द्वितीय स्वर्ग के चित्रांगद विमान में चित्रांगद देव, वरदत्त राजा, १६ वें स्वर्ग में सामानिकदेव, वज्रनाभि चक्री का लघु भ्राता विजय, और सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्र, ये अन्य ७ जन्म धारण किये थे वही वैश्यपुत्र का जीव अपने नवें जन्म में अनन्त विजय का लघु भ्राता "महासेन" (अनन्तवीर्य) हुआ।

राजपुत्र हरिवाहन का जीव क्रम से सूकर, भोगभूमिज आर्य, दूसरे स्वर्ग में मणिकुण्डल देव, वरसेन राजा, १६ वें स्वर्ग में सामानिक देव, वज्रनाभि चक्री का लघु भ्राता वैजयन्त, और सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्र, ये सात अन्य जन्म पाकर अपने ९ वें जन्म में महासेन का छोटा भाई "अच्युत" (श्रीषेण) हुआ।

वैश्यपुत्र नागदत्त का जीव क्रम से वानर, भोगभूमिज आर्य, दूसरे स्वर्ग में मनोहर देव, राजा चित्रांगद, १६ वें स्वर्ग में सामानिक देव, वज्रनाभि चक्री का लघुभ्राता जयन्त, और सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्र, ये सात अन्य-भव धारण कर अपने नवें जन्ममें श्रीषेण का लघु भ्राता "वीर" (गुणसेन) हुआ।

लोलुप हलवाई का जीव क्रम से नकुल (न्योला), भोगभूमिज, दूसरे स्वर्ग में मनोरथ देव, राजा शान्त मदन, १६ वें स्वर्ग में सामानिक देव, वज्रनाभि चक्री का छोटा भाई अपराजित; और सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्र, यह सात अन्य जन्म लेकर अपने नवें जन्म में वीर का छोटा भाई "वरवीर" (जयसेन) हुआ।

"भरत" के इन तद्भव मोक्षगामी छह लघुभ्राताओं के अतिरिक्त यथा समय ९३ अन्य सहोदर (भाई) और "ब्राह्मी" नामक एक लघु सहोदरा (बहिन) ये सब श्रीमती "यशस्वती" के उदर से और जन्मे। इस प्रकार सौ पुत्र और एक पुत्री सर्व १०१ सन्तति का जन्म श्रीमती "यशस्वती" के गर्भ से हुआ।

(८) बाहुबली और उसकी लघु सहोदरा "सुन्दरी" का जन्म

(आदि पुराण पर्व १६।८-२६)

पूर्वोक्त राजा "प्रीतिवर्द्धन" के सेनापति का जीव उत्तरकुरु भोगभूमिज आर्य, दूसरे स्वर्ग के प्रभा नामक विमान में प्रभाकर देव, वज्रजङ्घ का सेनापति अकम्पन, ग्रैवेयिक में अहमिन्द्र, वज्रनाभि का लघुभ्राता महाबाहु, और सर्वार्थ-सिद्धि विमान में अहमिन्द्र, ये अन्य छह भव धारण कर आठवें भव में श्री ऋषभ-देव भगवान की दूसरी स्त्री "सुनन्दा" के उदर से "बाहुबली" नाम का अतिशय रूपवान, बलवान और गुणवान पुत्र हुआ। कुछ समय पश्चात् इसी सुनन्दा देवी के गर्भ से "सुन्दरी" नाम की एक पुत्री का जन्म हुआ।

नोट--वर्तमान अवसर्पिणी काल में होने वाले २४ कामदेवों (कामदेव पदवी धारक पुरुषों) में प्रथम कामदेव श्री ऋषभदेव का यह "बाहुबली" नामक पुत्र ही था। और अन्तिम कामदेव श्री जम्बूस्वामी हुए जिन्होंने मथुरा नगरी के उद्यान से वर्तमान पंचम काल ही में श्री वीर निर्वाण से ६२ वर्ष पीछे निर्वाणपद पाया। (देखो

इसी ग्रन्थ लेखक लिखित 'श्री जम्बूस्वामी चरित' व 'जम्बूकुमार नाटक' जो छपकर प्रकाशित हो चुके हैं)।

(६) ब्राह्मी और सुन्दरी पुत्रियों तथा भरतादि पुत्रों का विद्याध्ययन।

(आदि पु० पर्व १६। ७२–१२७)

किसी शुभदिन सुखपूर्वक सिंहासन पर विराजे हुए श्री ऋषभदेव के चित्त में अनेक प्रकार की कलाओं और विद्याओं के प्रचार करने का विचार होरहा था कि अकस्मात् दैवयोग से उनकी दोनों बड़ी विनयवान और सुशीला पुत्रियां "ब्राह्मी" और "सुन्दरी" मंगलाभूषण पहने हुए उनके समीप आईं। इस समय वे दोनों ही बाल्यावस्था व्यतीत करके किशोर अवस्था को प्रारम्भ कर चुकी थीं। उन्हें सर्व प्रकार सुयोग्य जानकर बड़े प्रेम से अपनी गोदी में बिठाया। पहले कुछ विद्याध्ययन का महत्व समझाकर उन्हें मौखिक उपदेश किया। पश्चात् सुवर्ण पट्टिका पर 'नमः सिद्धेभ्यः' पूर्वक अ आ आदि अक्षरमालिका लिखकर उन्हें लिखना पढ़ना

सिखाना प्रारम्भ कर दिया। पश्चात् अनुक्रम से उन्हें इकाई आदि अङ्कों के द्वारा संख्या का भी ज्ञान कराया। श्री ऋषभदेवने दायें हाथ से अक्षर और बायें हाथ से अङ्क लिखकर उन्हें सिखाये। "अक्षरावली" में अधिक नैपुण्य बड़ी पुत्री "ब्राह्मी" ने और "अंकावली" में विशेष नैपुण्य छोटी पुत्री "सुन्दरी" ने प्राप्त किया। श्रीऋषभ-भगवान ने शब्दरूप तथा अर्थरूप समस्त वाङ्मय अर्थात् व्याकरण, छन्द और अलंकार आदि विद्याओं और स्त्रियोपयोगी गानादि अनेक कलाओं की उन्हें भले प्रकार शिक्षादी। पूर्वजन्मों के उत्तम संस्कार से उन्होंने इन सर्वविद्या और कलाओं को थोड़े ही कालमें अतिशीघ्र सीखलिया। धर्मशास्त्र में भी उन्हों ने अच्छी योग्यता प्राप्त करली।

पश्चात् भरत आदि १०१ पुत्रों को भी श्री ऋषभदेव ने अनेक विद्याओं और धर्मशास्त्र की भलेप्रकार शिक्षा दी। यद्यपि उन्होंने अपने सर्वही पुत्रोंको सर्व ही विद्या आदिकी शिक्षा दी तथापि "भरत" को नीतिशास्त्र और नृत्यकला का, "वृषभसेन" को गन्धर्वशास्त्र अर्थात् संगीत शास्त्र और वादित्र कलाका, 'अनन्तविजय' को नाट्य-

शास्त्र,वास्तु विद्या और चित्रकला का, बाहुबली को वैद्यकशास्त्र, धनुर्वेदविद्या, काम शास्त्रान्तर्गत स्त्रीपुरुषों के शुभाशुभ लक्षण, पशुपरीक्षा, और रत्नपरीक्षा का ज्ञान विशेषरूप से कराया। इसी प्रकार अन्य सर्व पुत्रों को भी यथा योग्य किसी एक एक विद्या या कला में विशेष नैपुण्य प्राप्त कराया। पश्चात् इन सर्व विद्याओं और कलाओं का प्रचार यथाअवसर शनैः शनैः सर्व साधारण में होगया।

नोट१– यहां यह बात विशेषता से ध्यान देने योग्य है कि पुत्रों से पुत्रियों की वय छोटी होने पर भी श्री ऋषभदेव ने पुत्रों को छोड़ कर पहिले पुत्रियों को विद्याध्ययन कराया था अर्थात् उनकी पूज्य दृष्टि में मनुष्य जाति को शिक्षित और विद्वान बनाने के लिये पुत्रियों को सुशिक्षित और विदुषी बनाना मुख्य है जिससे कि बालक बालिकाएँ माता के गर्भ ही से शिक्षा का मूल अंश प्राप्त करके जन्में और फिर जन्म समय से ही माता की गोद रूपी प्राकृतिक शिक्षालय में नित्यप्रति हँसते खेलते बिना किसी परिश्रम के ही वास्तविक शिक्षा का बहुभाग प्राप्त करलें। इस विषय में किसी विद्वान का वचन है कि किसी बालक को विद्या आरम्भ कराने का शुभ मुहूर्तकाल उसके जन्म दिवस से कमसे कम २० वर्ष पूर्व है।

नोट२—श्री ऋषभदेव ने अक्षरावली को लेख में प्रकट करने के लिये जिस लिपि का आविष्कार करके "ब्राह्मी" पुत्री को उसका पढ़ना लिखना सिखाया उस लिपिका नाम "ब्राह्मी लिपि" प्रसिद्ध हुआ। इस अक्षरावली में ३३ व्यंजन, २७ स्वर और ४ अयोगवाह, एवं सर्व ६४ अक्षर उन्होंने नियत किये। इन ६४ मूलाक्षरों से बनसकने वाले सर्व संयोगी अक्षरों की संख्या मूलाक्षरों सहित १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ (लगभग १८४॥ संख) है। इसका सविस्तार विवरण जानने के लिये देखो "श्रीवृहत् जैन शब्दार्णव" में शब्द "अक्षर" की व्याख्या पृष्ठ ३१ से ३४ तक ॥

(१०) प्रजा के लिये आजीविका का उपाय, क्षत्रिय आदि तीन वर्णों की स्थापना और इन्द्रद्वारा ग्राम नगरादि का बसाना

(आदि पु० पर्व १६। १२८–१९०)

श्री ऋषभदेव के कुमार काल के २० लाख पूर्व बीतने पर जब कल्पवृक्ष रहे-

रहे भी सर्व नष्ट हो चुकने के पश्चात् जो कई प्रकार के धान्य व फलादि पृथ्वी में स्वयं उत्पन्न हुए थे और जिन्हें काममें लाने की विधि श्री ऋषभदेव के पिता "श्री नाभिराय" ने प्रजा को बताई थी वे धान्य और फलादि भी कालके प्रभाव से प्रायः नीरस, अल्पवीर्य और अपक्व रह रह कर पृथ्वी ही में नष्ट होने लगे, इधर प्रजा भी सन्तानाधिक्य से कुछ वृद्धि को प्राप्त होने लगी तो प्रजा भूख आदि के कष्ट से व्याकुल होकर अपनी दुःख निवृत्ति का उपाय पूछने के लिये श्री नाभिराय के पास आई। श्री नाभिराय ने प्रजा के मुखियाओं को श्री ऋषभदेव के पास जाने की आज्ञा दी। श्रीऋषभदेव ने प्रजा के कष्ट निवारणार्थ उसे बहुत कुछ आश्वासन देकर पहले तो इन्द्र द्वारा अनेक मन्दिर, ग्राम और नगर आदि की रचना कराई। उन में रहने सहने आदिका यथोचित प्रबंध किया। अनेक राज्य स्थापनकर राजाओं को **नीति शास्त्र** की शिक्षा दी। प्रजा को "राजनीति" के अनुकूल चलने के लाभादि बताये और साथ साथ ही आजीविका सम्बन्धी **असि, मसि, कृषि,**

वाणिज्य, विद्या, और शिल्प, इन षट कर्मों की शिक्षा देकर सुगमता के लिए उसे तीन वर्णों में विभाजित कर दिया। शस्त्र धारण कर असिकर्म द्वारा आजीविका करनेवाले क्षत्रिय कहलाये। स्याही से शुद्ध और सुन्दर ग्रंथादि लेखन क्रिया कर मसि कर्म द्वारा, या कृषि कर्म अर्थात् खेती द्वारा या वाणिज्य व्यापार द्वारा या पशु-पालन द्वारा अजीविका करने वाले अर्य्य, ऊरुव्य, ऊरज या वणिक और पश्चात् वैश्य नाम से प्रसिद्ध हुए। नृत्य गानादि विद्या या कला सिखाने द्वारा, अथवा शिल्प अर्थात् अनेक प्रकार की हस्त कलाओं अर्थात् दस्तकारी आदि द्वारा आजीविका करने वाले अथवा जो लोग क्षत्रिय और वणिकों की किसी न किसी प्रकार को सेवा सुश्रूषा कर अपनी आजीविका करते थे वे जघन्यज, 'अवर' वृषल और पश्चात् "शूद्र" नाम से प्रसिद्ध हुए। जिस दिन नगर ग्रामादि बसने के पश्चात् यह वर्णव्यवस्था स्थिर की गई उसी दिन से एक नवीन युग का प्रारम्भ माना जाता है। इस दिन आषाढ़ कृ० १ तिथि थी। यद्यपि भोगभूमि सम्बन्धी सुषमा दुःषमा नामक तृतीय काल में अभी लग-

भग ६४ लाख पूर्वकाल शेष था तथापि "हुँडावसर्पिणी" काल दोष से इतने समय पहिले ही भोगभूमि का अन्त हो कर इसी तिथि (आ० कृ० १) से कर्म-भूमि का प्रारम्भ पूर्णरूप से हो गया।

नोट—धार्मिक शिक्षा तथा अक्षर विद्या और अंक विद्या जो लौकिक चातुर्य के लिये गौणरूप से और आत्मकल्याणार्थ पारमार्थिक ज्ञान प्राप्ति के लिये मुख्य रूप से हितकारी हैं, इनके द्वारा उस समय आजीविका नहीं की जाती थी। किंतु यह महत्वपूर्ण शिक्षा बिना कुछ लिये केवल धार्मिक दृष्टि से स्वपरकल्याणार्थ दी जाती थी। इसे उदरपूर्णा आदि का साधन ज्ञानना पाप माना जाता था।

उपरोक्त षट् कर्मों में जो "विद्या" कर्म है उस से प्रयोजन केवल नृत्य गान, जलतरङ्ग, मल्ल, आदि विद्या और कलाओं से है॥

(११) श्री ऋषभदेव का राज्याभिषेक

(आदि पुराण पर्व १६। १९१–२४०)

कुछ काल में पूर्वोक्त षट्कर्मों की प्रवृत्ति से जब प्रजा की स्थिति सुधर गई,

सब प्रजा शान्ति से रहने सहने लगी तब आदि ब्रह्मा भगवान ऋषभदेव को **समराट्** पद पर स्थापन करने के लिए इन्द्रादिक देवों ने आकर शुभ मुहूर्त्त में बड़े समारोह और महोत्सव के साथ उनका राज्याभिषेक किया जिस में भगवान के स्थापित किए उस समय के सर्व ही क्षत्रिय राजे उन्हें अपना स्वामी मान कर सम्मिलित हुए। उस समय उन के पिता "श्री नाभिराय" ने सर्व उपस्थित मंडली के सन्मुख "समस्त मुकुटबद्ध राजाओं आदि के पालन करने वाले भगवान ऋषभदेव हैं, मैं नहीं हूँ", यह कह कर अपने हाथ से अपने मस्तक का मुकुट उतार कर भगवान के मस्तक पर रक्खा और उनके ललाट पर पट्टबन्ध स्थापन किया। तत्पश्चात् उसी अवसर पर इन्द्र ने बड़े ही आनन्द के साथ उस सभारूपी रंगभूमि में सर्व सभा जनों को रिझानेवाला "आनन्द नाटक" किया। तदनन्तर आदि ब्रह्मा श्री ऋषभदेव भगवान की आज्ञा लेकर सर्व इन्द्रादिक देव अपने अपने स्थान को चले गए ॥

—✱✱✱—

(१२) वर्णव्यवस्था के नियम और राज वंशोत्पत्ति

(आदि पुराण अ० १६ । २४१–२७५)

अपने पिता श्री नाभिराय से राज्य पाने के पश्चात् आदिब्रह्मा "श्री ऋषभदेव" महाराज ने पूर्वोक्त तीनों वर्णों के लिये अपनी २ मर्यादा को सुदृढ़ता से पालनार्थ यथा आवश्यक ऐसे **नियम** बनाए जिनके अनुकूल सर्व कार्य करते रहने से किसी प्रकार की वर्णसंकीर्णता न आवे और सर्व सांसारिक व पारलौकिक कार्य सुव्यवस्थित रूप से भले प्रकार परस्पर के मेल जोल के साथ चलते रहें। उस समय सम्राट् श्री ऋषभदेव भगवान ने हरि, अकम्पन, काश्यप, और सोमप्रभ, इन चार महा भाग्यशाली क्षत्रियों को बुला कर और यथायोग्य आदर सत्कार पूर्वक उनका राज्याभिषेक कर उन्हें **महामांडलिक** राजा बनाया। प्रत्येक के आधीन एक २ सहस्र राजा नियत किए। भगवान की आज्ञानुसार "हरि" ने अपना नाम "**हरिकान्त**" रक्खा और **हरिवंश** का मूलनायक

कहलाया। "**अकम्पन**" (सती सुलोचना का पिता) ने अपना नाम "**श्रीधर**" रक्खा और "**नाथवंश**" का मूलनायक बना। '**काश्यप**' ने अपना नाम '**मघवा**' रक्खा और "**उग्रवंश**" का मूलनायक हुआ। इसी प्रकार "सोमप्रभ" (श्रेयांश का बड़ा भाई) ने अपना नाम "**कुरुराज**" रक्खा और कुरुदेश का राजा होकर "**कुरुवंश**" का शिखामणि बना।

पश्चात् श्रीऋषभदेव ने कच्छ महाकच्छ (भगवान ऋषभ के श्वसुर) आदि आठ राजाओं का राज्याभिषेक कर योग्य सत्कारपूर्वक उन्हें **अधिराजा** पद दिया और प्रत्येक के आधीन पूर्वोक्त एक एक सहस्र राजाओं में से पांच पांचसौ राजा नियुक्त कर दो २ अधिराजों के अधिपति "हरि" आदि चारों को बनाया। इसी प्रकार भगवान ने अपने पुत्रों को भी यथायोग्य सम्पत्ति दी।

जिस समय कल्पवृक्ष नष्ट हुए थे उस समय भगवान ने मनुष्यों के लिये प्रथम ही **इक्षुरस** ग्रहण करने का उपदेश दिया था, इसलिये लोग उन्हें "**इक्ष्वाकु**"

कहते थे। "इक्षून् आकयति कथयतीति इक्ष्वाकुः" अर्थात् जो ईख लाने को कहे उसे "इक्ष्वाकु" कहते हैं। इसी प्रकार उनके गुणानुसार प्रजा उन्हें गौतम, काश्यप, मनु, कुलकर, कुलधर, विश्वकर्मा, विधाता, सृष्टा, ब्रह्मा, इत्यादि अनेक नामों से पुकारती थी।

नोट१—यहां महामांडलिक शब्द का प्रयोग "महाराजा" के लिये किया गया जान पड़ता है, क्योंकि श्री त्रिलोकसार की गा० ६८५ के अनुसार एक सहस्र मुकुटबन्ध राजाओं के अधिपति को "महाराजा" कहते हैं, महामांडलिक नहीं कहते। महामांडलिक राजा के आधीन आठ सहस्र राजा होते हैं।

नोट २—श्री हरिवंशपुराण सर्ग १५ श्लोक ५७, ५८ के अनुसार "हरिवंश" का मूलनायक चम्पापुरी नरेश "आर्य" की "मनोरमा" रानी का "हरि" नामक पुत्र था।

नोट३—श्री ऋषभ भगवान का कुल पूर्वोक्त कारण से "इक्ष्वाकुवंश" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पश्चात् इक्ष्वाकुवंश की दो शाखाएँ "सूर्यवंश" और "चन्द्रवंश" भगवान के दो पौत्रों "अर्ककीर्ति" और "सोमकीर्ति" के नामों पर प्रसिद्ध हुईं, अर्थात् भरतचक्रवर्ती के ज्येष्ठ पुत्र अर्ककीर्ति के नामपर अर्कवंश (सूर्यवंश) और बाहुबली

के ज्येष्ठ पुत्र सोमकीर्ति (महाबल) के नाम पर सोमवंश (चन्द्रवंश), इन दो नामों से इक्ष्वाकुवंश प्रसिद्ध हुआ।

(१३) भगवान ऋषभदेव का वैराग्य और मुनिदीक्षा ग्रहण

(आदि पुराण पर्व १७)

भगवान "ऋषभदेव" जब लगभग २० लाख पूर्व कुमार अवस्था में और लगभग ६३ लाख पूर्व राज्यशासन के सुख भोगने में, अर्थात् अपनी आयु के सर्व लगभग ८३ लाख पूर्व (५८५६२८०००००००००००००० वर्ष छह अंक १५ शून्य, सर्व २१ स्थान प्रमाण वर्ष) व्यतीत कर चुके और लगभग १ लाख पूर्व की उनकी आयु जब शेष रही तब एक दिन पूर्ण राज्य विभूति - संयुक्त राज्यसभा में रत्नजड़ित सिंहासन पर बड़े सुखपूर्वक विराजे थे कि अचानक गन्धर्व जाति के देवों और अनेक सुन्दर रूपवान अप्सराओं को साथ लिये हुए पूजन की सामग्री संयुक्त "सौधर्मेन्द्र" ने भगवान की सेवार्थ राज्यसभा में प्रवेश किया। अतिशय भक्तिवश होकर भगवान का पूजन आराधन करने के लिये अप्सराओं का नृत्य कराना प्रारम्भ कर

दिया। भगवान ऋषभ किस प्रकार राज्य और भोगों से विरक्त होंगे यही सोचकर इन्द्र ने उस नृत्य में नीलांजना नामक एक ऐसी अप्सरा (नृत्य करने वाली देवांगना) को खड़ा किया कि जिसकी आयु लगभग पूर्ण हो चुकी थी अर्थात् एकादि क्षण ही की शेष थी। वह अतिशय रूपवान सुन्दरी अनेक प्रकार से हाव, भाव, विभ्रम, तथा रस, ताल, पाद संचारादि युक्त सर्व सभाजन के मन को मोहित करने वाला नृत्य करते करते आयु के पूर्ण होजाने से चंचल बिजली के समान एकदम नष्ट (अदृश्य) हो गई। उसके अदृश्य होते ही नृत्य के रस का भङ्ग न हो इस भय से इन्द्र ने तुरन्त ही अपनी देव माया से उसकी जगह हू बहू वैसी ही दूसरी "नीलांजना" रचकर ज्यों की त्यों नृत्य करती हुई खड़ी करदी। सभाजनों में से किसी ने इस परिवर्तन को न पहचाना, किन्तु "भगवान ऋषभ" अपने असाधारण ज्ञानबल से इस परिवर्तन को पूर्णरूप से ताड़ गये। नीलांजना देवी के समान जगत की माया और सर्व राज्यवैभव आदि को क्षण स्थायी और विनश्वर विचारते हुए तुरन्त ही भोगों से विरक्त हो गये और संसार की असारता का स्वरूप विचारते हुए बारम्बार द्वादशानुप्रेक्षाओं का चिन्तवन करने लगे। इन्द्र

ने अपने "अवधिज्ञान" से जगद्गुरु भगवान ऋषभ के अन्तःकरण में संचार करते हुए अतिशय संवेग और वैराग्य रूप विशुद्ध भावों को जानलिया।

उसी समय अपने नियोगानुसार भगवान को वैराग्य में अधिक दृढ़ करने के विचार से तथा तप कल्याणक की पूजा के लिये लौकान्तिकदेव*भी "ब्रह्मलोक" से आगये और अत्यन्त विनम्रतायुक्त भक्ति भाव से उनका स्तवन आदि कर उन्हें पूर्णरूप से दृढ़ता के साथ तपश्चरण ग्रहण करने के सन्मुख करदिया और अपने स्थान को लौट गये। इतने ही में आसन कम्पायमान होने पर अपने अपने अवधिज्ञान द्वारा भगवान के तप ग्रहण करने का अवसर जानकर सब इन्द्रादिक देव अनेक विक्रिया युक्त आने लगे और आकर अयोध्यापुरी के चारों ओर ठहर गये।

---

*लौकान्तिक देव-पंचम स्वर्ग के अन्तिम लौकान्तिक पटल में निवास करनेवाले विषय भोगों से अत्यन्त विरक्त एक भवावतारी देवऋषि। इनके सम्बन्ध में विशेष बातें जानने के लिये देखो "श्री वृ० जैनशब्दार्णव" नामक जैन शब्दार्थ कोष पृ० ६८ ९९ पर शब्द "अग्न्याभ" की व्याख्या।

पु.

तदनन्तर इन्द्रादिक देवों ने भगवान के **निष्क्रमण** अर्थात् तपश्चरण धारण करने का महा कल्याणकोत्सव करने के लिये **क्षीरसागर** के पवित्र जल से उन का महाभिषेक कर उन्हें दिव्य वस्त्राभूषणादि से अलंकृत किया। पश्चात् उसी समय भगवान ने अपने ज्येष्ठ पुत्र **भरत** को अभिषेक पूर्वक अपने साम्राज्यपद पर स्थापन कर **बाहुबली** को "युव राज" पद दिया। अन्य पुत्रों को भी अपनी राज्य सम्पत्ति का यथायोग्य बटवारा कर दिया।

तदन्तर जगत गुरु **भगवान रिषभ** ने अपने पिता "नाभिराय" तथा माता "मरुदेवी" आदि कुटुम्बी जनों से पूछ कर **सुदर्शना** नामक दिव्य पालकी में पदार्पण किया जिसे बड़ी भक्ति भाव से पहिले तो राजा लोग पृथ्वी पर सात पेंड तक, फिर विद्याधर लोग आकाश में सात पेंड तक ले चले। पश्चात् इन्द्रादिक देव बड़ी प्रसन्नता के साथ जय जय कार करते हुए आकाशमार्ग से लेजा कर और १२ योजन लम्बी ९ योजन (१ योजन ४ कोश या १६ सहस्र

गज का अथवा ८ मील से कुछ अधिक का होता है ।) चौड़ी अयोध्या पुरी से कुछ ही दूर दक्षिण की ओर के निकटवर्त्ती **"सिद्धार्थक"** नामक विशाल वन में पहुँचकर (जहां आजकल का इलाहाबाद या प्रयाग नगर बसा है उस के निकट उसकी उत्तर दिशा की ओर) भगवान की पालकी देवों द्वारा पहिले ही से स्थापित एक चन्द्रकान्तमणि की स्वच्छ और उन्नत गोलाकार शिला पर उतारी । भगवान पालकी से उतर कर उस शिला पर विराजे । जिस तिथि और नक्षत्र में भगवान ऋषभ का जन्म हुआ था वही तिथि और नक्षत्र अर्थात् **चैत्र कृ० ६ तिथि और उत्तराषाढ नक्षत्र** तथा शुभ लग्न और शुभ मुहूर्त इस समय विद्यमान थे । सायंकाल का समय था जब कि भगवान ने वट वृक्ष के तले पद्मासन से पूर्व मुख बैठ कर और सिद्धों को नमस्कार कर के बड़े हर्ष और परम उत्साह के साथ पहिले पंचमुष्टि केश लोच किये, मानो काले केशों के आकार में फैली हुई मोह कर्म की बेलों के समूह ही को अपने शिर से उपाड़ कर फेंक दिया । पश्चात् बहिरंग और अन्तरंग दोनों प्रकार के सर्व परिग्रह त्याग कर और दिगम्बर रूप

धारण कर मुनि दीक्षा ग्रहण करली । भगवानके शिर से उतरे हुए वे पंचमुष्टि केश "सौधर्मेंद्र" ने बड़े आदर और भक्तिभाव से एक रत्नपिटारे में रख कर "क्षीर समुद्र" में प्रवाहित करदिये ।

जिस समय भगवान ने मुनि दीक्षा ग्रहण की उसी समय उनके साथ उनके सेवक चार सहस्र अन्य राजाओं ने भी बिना समझे केवल उनकी अटल भक्तिवश उन के अनुकरणरूप मुनिदीक्षा ग्रहण करली । इन्द्रादिक देव भगवान की पूजा स्तुति आदि कर अपने २ स्थान को चले गये । भगवान के पुत्र भरत आदि भी पूजा स्तुति कर अयोध्या को लौट आये ॥

(१४) भगवान ऋषभ का तपश्चरण और एक वर्षोपवास के पश्चात् प्रथम पारणा

(आदि पुराण पर्व १८, १९, २० । ३–२१७)

भगवान ने मुनिदीक्षा धारण करते समय षटमासोपवास व्रत की अर्थात् छह महीने के लिये अन्न जलादि आहार ग्रहण करने के त्याग की प्रतिज्ञा की । और

चित्तके समस्त संकल्प विकल्प रोक कर कायोत्सर्ग*धारण करके चन्द्रकान्त शिला पर खड़े हुए नासाग्र-दृष्टि युक्त मन एकाग्र करने के प्रयत्न में लग गये। उसी समय विशुद्ध परिणामों के बल से भगवान् को **'मनः पर्ययज्ञान'** की भी प्राप्ति हो गई ॥

जिन "कच्छ" "महाकच्छ" आदि ४ सहस्र राजाओं ने मुनि व्रत पालने के स्वरूप और नियमादि को समझे बिना ही भगवान् के साथ साथ मुनिदीक्षा ग्रहण की थी, वे भूख प्यासादि के कष्ट को अधिक समय तक सहन न कर सके। दो तीन मास भी अपने धैर्य्य को स्थिर न रख सके। बन के कन्द मूल फल आदि खाकर अपनी क्षुधानिवृत्ति करने लगे। स्त्री पुत्र व राज्यवैभव आदि अनेक भोगोप-

---

*खड़े होकर कायोत्सर्ग तप करते समय चरणों के अग्रभाग का अन्तर अपने अंगुल से प्रायः १२ अंगुल का और एड़ियों का अन्तर ४ अंगुल का रक्खा जाता है। दोनों बाहु सीधी नीचे को लटकादी जाती हैं। दोनों ओठ परस्पर मिले रहते हैं श्वासोश्वास धीरे धीरे नासिका द्वारा आताजाता है। दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर रहती है। सारा शरीर न तो ढीला और न बहुत तनाहुआ अपने प्राकृतिक रूपमें पूर्ण सरल और अङ्ग विकार रहित ऊँचातुला रहता है ॥

रहा । ५६ दिक्कुमारी देवियां * अपने अपने नियोगानुसार ... जिन माता की

पभोगजन्य सुखों का बारम्बार चिन्तवन करते हुए अधिक कष्ट न सहन कर सकने से अपने अपने नगर को लौट जाना चाहते थे। परन्तु अज्ञान वश यह समझ कर न लौटे कि भगवान अपना संकल्पित कोई महान कार्य सिद्ध करके कुछ न कुछ दिन पीछे अवश्य घर को लौटेंगे ही; तब हमारी इस धृष्टता और भक्तिविमुखताके लिये हम से अवश्य अप्रसन्न होजायँगे। अथवा भगवान को अकेले वन में छोड़जाने से महाराज भरत अवश्य कोपित होंगे। अतः वन ही में रहकर वनफल खाते, सरोवरों का जल पीते और अन्तमें दिगम्बर वेप को भी त्याग कर कोपीनादि ग्रहणकर भगवान के लौट चलने की प्रतीक्षा करने लगे। अपनी अपनी इच्छानुसार किसी ने अपने शरीर पर भस्म लगा ली, कोई इकदंडी और कोई त्रिदंडी बन गए, किसी ने वृक्षों की छाल आदि को अपने वस्त्र बनाकर शरीर को ढका, कोई पत्तों व टहनियों की झोंपड़ियां बनाकर उनमें निवास करने लगे। यह सब कुछ अयोग्य कार्य करने पर भी जल पुष्पादि से भगवान के चरणों का पूजन करते हुए अपना भक्तिभाव प्रकट करते रहे।

जबकि भगवान कर्म शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए ध्यानारूढ़ थे

उसी अवसर में भगवान के श्वशुर, "कच्छ", "महामच्छ" के सुकुमार तरुण पुत्र (भगवान के साले) "नमि", "विनमि" भोगाभिलाषवश भगवान के पास आए और उनके चरण पकड़ कर बड़ी विनय के साथ वारम्बार कहने लगे—"भगवन् ! आपने अपने भरतादि पुत्रों को तो अपना साम्राज्य बांटा, परन्तु हम को भूल ही गए। उस समय तो हमें कुछ न दिया, अब तो प्रसन्न होकर हमें कुछ दीजिए।" भगवान ध्यानावस्थ थे, कुछ न बोले। परन्तु भगवान के ध्यान में विघ्न पड़ता देख कर और उन के चरणों में उनकी अति प्रशंसनीय गाढ़ भक्ति पाकर नागेन्द्र ने उन्हें विजयार्द्ध पर्वत पर अपने विमान पर ले जाकर और उसकी दक्षिण श्रेणी की ५० और उत्तर श्रेणी की ६० विशाल नगरियों तथा सारे पर्वत की मनोहारिणी शोभा भले प्रकार दिखाकर उन्हें उन सर्व नगरियों का अधिपति और वहां के सर्व विद्याधर राजाओं का शिरोमणि बना दिया। दक्षिण श्रेणी में पूर्व दिशा की ओर से २३ वें नगर "रथनूपुरचक्रवाल" में लेजाकर राज्याभिषेक पूर्वक "नमि" को दक्षिण श्रेणी का और "विनमि" को

उत्तर श्रेणी का अधिपति बनाया। चलते समय वह नागेन्द्र उन दोनों को विधिपूर्वक "गान्धारपदा और "पन्नगपदा" ये दो विद्यायें भी देगया।

इधर जब अपनी प्रतिज्ञानुसार भगवान ऋषभ को छह मास निराहार तपश्चरण में बीत गए तो वे आहार ग्रहण करने का मार्ग प्रकट करने और सुखपूर्वक शरीर की स्थिति द्वारा अपना इष्ट कार्य अर्थात मोक्षप्राप्ति का साधन सिद्ध करने के विचार से शुद्ध आहार ग्रहण करने के लिए ईर्यापथ--शुद्धिपूर्वक बस्ती की ओर को चले। मुनियों को आहार देने की विधि न जानने और भगवान के मन का अभिप्राय न पहचानने से ग्राम नगरादि निवासी लोग बड़ी प्रसन्नता और भक्तिपूर्वक उनके सन्मुख आ आकर उनसे पूछते थे "भगवन् ! किस कार्य के लिए आप यहां पधारे हैं ? हमारे योग्य हमें कोई सेवा कार्य बताइए।" यह सुन कर भी जब भगवान मौन धारण किए आगे बढ़ जाते तो कुछ लोग कुछ दूर तक उनके पीछे २ जाते। कोई बहुमूल्य रत्न आदि लाकर भेंट स्वरूप उन के सन्मुख रखते, कोई उत्तम से उत्तम अश्व, गज, वस्त्र, आभूषण और कन्या आदि ला लाकर भगवान से उन्हें ग्रहण करने की प्रार्थना करते और कोई कोई स्नान

करने की सामग्री के साथ साथ नाना प्रकार की भोजन-सामग्री लाकर उन्हें बड़े विनय के साथ चरणों में मस्तक नवा नवा कर स्नान व भोजन कराने का प्रयत्न करते थे। भगवान ऋषभ इन सब क्रियाओं को अन्तराय मान कर मौनावलम्बी हुए आगे को बढ़ जाते अथवा वस्ती से बन में को लौट आते और ध्यानारूढ़ होजाते थे ॥

इस प्रकार यथाविधि निरन्तराय आहार ग्रहण करने के लिये विहार करते भगवान् को छह मास से अधिक और भी व्यतीत हो गये, अर्थात् निराहार तप करते एक वर्ष से अधिक समय बीत गया। तब भगवान् ऋषभ विहार करते हुए एक दिन कुरुजांगल देश की राजधानी हस्तिनापुरी में पहुँचे। हस्तिनापुर नरेश "सोमप्रभ" के लघु भ्राता "**श्रेयांस**" को भगवान् के दर्शन करते ही जातिस्मरण (पूर्व भव की स्मृति) हो जाने से उसे मुनियों को नवधा भक्ति पूर्वक शुद्ध आहार देने की सब विधि स्मरण हो आई। अतः इस ने नवधा भक्तिपूर्वक भगवान् को निरन्तराय इक्षुरस का शुद्ध आहार कराया। तपश्चरण ग्रहण करने के शुभ दिन से १३ मास और ९ दिन पीछे **शुभ मिती वैशाख शु० ३ के दिन** भगवान् ऋषभ का पहिला पारणा हुआ। जिसके सातिशय पुण्य से उसी समय वहां देवोकृत पंचाश्चर्य हुए और जिस

रसोईघर में भगवान् ने इक्षुरस ग्रहण किया था वहां उस दिन के लिये अक्षय अर्थात् अटूट भोजन हो गया। इसी लिये यह शुभ तिथि वैशाख शु० ३ उसी दिन से "अक्षय तृतिया" या "अखय तीज" के नाम से प्रसिद्ध हुई। आहार-दिवस की पूर्व रात्रि के अन्तिम प्रहर में राजकुमार "श्रेयांस" ने भगवान् के शुभागमन सूचक सात शुभ स्वप्न भी देखे थे। यह "श्रेयांस कुमार" भगवान् ऋषभदेव के पूर्व भव धारी राजा वज्रजंघ की अतिशय प्रिय रानी "श्रीमती" का जीव था। (देखो पृष्ठ ४४।२)

निरन्तराय आहार हो जाने के पश्चात् भगवान् वन में जाकर तपश्चरण करने लगे। पंच महाव्रत, पंच समिति, पंचेन्द्रिय निरोध, षडावश्यक, और केशलुंच आदि सप्त प्रकीर्णक, ये २८ मूलगुण पूर्णरूप से पालन करते थे। अठारह सहस्र भेदरूप मैथुनकर्म के दोषों से बच कर अष्टादश सहस्र शीलाङ्ग और चौरासी लक्ष उत्तर गुणों के पालनार्थ प्रतिक्षण पूर्ण प्रयत्न-शील थे। अष्टांग सम्यग्दर्शन, अष्टांग सम्यग्ज्ञान और त्रयोदश सम्यक् चारित्र के धारक भगवान् ऋषभ पंचाचार, द्वादश तप, द्वाविंशति परीषहजय, दशलक्षणधर्म, द्वादशानुप्रेक्षा चिंतवन, इत्यादि को यथाविधि निःशल्य रहित पालन करने में प्रतिक्षण तत्पर रहते थे। आवश्यक्ता के समय ३२ प्रकार के

अन्तराय रहित और ४६ दोषवर्जित शुद्ध आहार भी ग्रहण करते थे। इन सर्व व्रत नियमादि को यथाविधि पालन करते हुए आर्त्त और रौद्र ध्यानों के त्यागी वे भगवान् ऋषभ यथाअवसर पिन्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत, इन चार प्रकार के धर्मध्यान द्वारा अनेक अशुभ कर्मों की निर्जरा कर रहे थे। ❊

(१५) भगवान् ऋषभदेव का धर्मध्यान व शुक्लध्यान और केवलज्ञान की प्राप्ति

(आदि पु० पर्व २०। २१८–२७३ व पर्व २१)

इस प्रकार उग्रोग्र तपश्चरण द्वारा भगवान् ऋषभदेव रहे सहे अनादि कर्म बन्धनों को निर्बल और ढीले करते हुए और अनेक देशों में विहार करते "पुरिमताल" नामक नगर के निकटस्थ "शकट" नाम के उद्यानमें पहुँचे। इस में उद्यान के एक पवित्र निराकुल एकान्त स्थान में "वट वृक्ष" के नीचे पड़ी एक स्वच्छ शिला पर

❊ २८ मूलगुण, १८ सहस्र मैथुनकर्म, द्वादश तप, द्वाविंशति परीषह, दशलक्षण धर्म, त्रिशल्य, ४६ आहार दोष, आर्तध्यान, धर्मध्यान इत्यादि का विवरण जानने के लिये क्रम से देखो "श्री वृ० जैन शब्दार्णव" के पृष्ठ २२६, २४६-२४९, २४९-२५१, ५३, २०६, २४६, १४, १३२, ६६, ३५ व २०४ इत्यादि।

पूर्वमुख पर्यंकासन जमा कर और तेलाव्रत (अष्टोपवास) की प्रतिज्ञा लेकर बैठ गये। ध्यानारूढ़ होकर विशुद्ध लेश्या और निर्मल परिणामों द्वारा अप्रमत्त नामक सातवें गुणस्थान में पहुँच कर "क्षायिक श्रेणी" चढ़ने के सन्मुख हुए। गुणश्रेणी निर्जरा करते हुए अधःप्रवृतिकरण, अपूर्वकरण, और अनिवृति-करण, इन तीन करणों अर्थात् अतिशय विशुद्ध परिणामों द्वारा सातिशय सक्षम गुण-स्थान तथा अष्टम और नवम गुणस्थानों तक एक अन्तर्मुहूर्त काल में चढ़ गये। पश्चात् सूक्ष्म साम्पराय और क्षीणमोह नामक दसवें और बारहवें गुणस्थानों में एक ही अन्तर्मुहूर्त में पहुँच कर और निम्नोल्लिखित नोट २ में दिये क्रमानुसार सर्व १४८ प्रकार की कर्मप्रकृतियों में से ६३ प्रकृतियों का क्षय कर चुकने पर श्री ऋषभ जिन १३वें गुणस्थान में जा पहुँचे जहां उनके निर्मल आत्मा में लोकालोक को तथा भूत भविष्यत और वर्तमान तीनों काल सम्बन्धी त्रैलोक्यवर्ती सर्व द्रव्यों की सर्व अनन्तानन्त पर्यायों को, युगपत प्रकाशित करदेने वाले केवलज्ञान का प्रादुर्भाव (प्रकाश) शुभमिती फाल्गुन कृ० ११ को पूर्वान्ह समय उत्तराषाढ नक्षत्र में हो गया। श्री ऋषभजिन ने ९९९ वर्ष ११ मास और दो दिन, अर्थात लगभग एक सहस्र

वर्ष—२८ दिन कम १००० वर्ष--तपश्चरण किया और गर्भ, जन्म या तप तिथि ही के नक्षत्र (उत्तराषाढ) में सर्वज्ञपद पाया ॥

नोट १—मूल कर्म प्रकृतियां सब ८ और उनके उत्तर भेद १४८ हैं—(१) ज्ञानावरणी ५, (२) दर्शनावरणी ९, (३) मोहनीय २८, (४) अन्तराय ५, (५) वेदनीय २, (६) आयु ४. (७) नाम ९३, और (८) गोत्र २।

इनमें से पहिली ४, मूल कर्म प्रकृतियों की उत्तर भेदरूप ४७ (५+९+२८+५) कर्म प्रकृतियां तो "घातिया" और शेष ४ मूल कर्म प्रकृतियों की १०१ (२+४+९३ +२) उत्तर कर्म प्रकृतियां "अघातिया" कहलाती हैं। इन ही के बन्धनों में फँसा संसारी जीव इस अपार संसार की ८४ लाख जाति की अगणित योनियों में बारम्बार जन्म मरण करता हुआ अनेक प्रकार के सांसारिक सुख दुःख पाता रहता है। यह संसारी जीव उग्रोग्र तपश्चरण द्वारा जब इन सर्व १४८ कर्मप्रकृतियों में से घातिया कर्मकी सर्व ४७ प्रकृतियां और अघातिया की १०१ में से १६ प्रकृतियां एवं सर्व ६३ प्रकृतियों का क्षय कर देता है तो अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, और अनन्त वीर्य, इन चार चतुष्टय युक्त सर्वज्ञ और त्रिकालज्ञ पद जिसे "अरहन्तपद" या "जीवनमुक्तपद" भी कहते हैं प्राप्त करलेता है। और चौदहवें "अयोगकेवलि" नामक गुणस्थान के अन्तिम दो समय में क्रमसे ७२ और १३ प्रकृतियों, एवं शेष ८५

कर्म प्रकृतियों का भी क्षय यह जीव करदेता है तो "सिद्ध पद" या "विदेहमुक्त पद" "या निर्वाणपद" पालेता है।

नोट २–भगवान ऋषभदेव ने निम्न लिखित क्रमानुसार ६३ कर्म प्रकृतियों का क्षय किया:—

(१) दो जन्म पूर्व अपने "वज्रनाभि चक्रवर्ती" के भव में क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करते समय अनिवृत्तिकरण रूप परिणामों द्वारा पहिले तो अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, और लोभ, इन चार चारित्रमोहनीय कर्म की प्रकृतियों का, पश्चात् क्रम से मिथ्यात्व प्रकृति, सम्यक् मिथ्यात्व या मिश्र प्रकृति और सम्यक्त्व प्रकृति, इन तीन दर्शन मोहनीय कर्म की प्रकृतियों को, एवं मोहनीय कर्म की इन सात प्रकृतियों का क्षय कर के "असंयत" नामक चतुर्थगुणस्थानवर्ती क्षायिक सम्यक्ती हो गये।

पश्चात् उसी भव में चौथे और पांचवें गुणस्थानों में क्रम से आयु कर्म की नरकायु, और तिर्यंचायु, इन दो प्रकृतियों की सत्ताव्युच्छित्ति (सत्ता से विछुड़ना

या' अलग हो जाना या क्षय हो जाना) की । अर्थात् "श्री ऋषभ भगवान" ने दो जन्म पूर्व ९ प्रकृतियों का क्षय किया ॥

(२) इस जन्म में "अप्रमत्त" (सातिशय अप्रमत्त) नामक सातवें गुणस्थान के अन्त समय में अधःकरण परिणामों द्वारा आयु कर्म की एक देवायु नामक कर्म प्रकृति की भी सत्ताव्युच्छित्ति कर दी ।

(३) पश्चात् "अपूर्वकरण" नामक अष्टम गुणस्थानमें पहुँचकर अपूर्वकरण परिणामों द्वारा क्षायिकश्रेणी पर आरोहण करके गुणश्रेणी निर्जरा करते और कर्म शत्रुओं को मारते गिराते हुए ऊपर की श्रेणियों या गुणस्थानों पर चढ़ने लगे ।

(४) इस प्रकार श्री ऋषभजिन अनिवृतिकरण नामक नवें गुणस्थान में पहुँच कर "पृथक्त्ववितर्कवीचार" नामक शुक्ल ध्यान के प्रथम चरणरूप विशुद्ध परिणामों द्वारा अर्थसंक्रान्ति व्यंजनसंक्रान्ति और योगसंक्रान्तिरूप पर्यायों के भेदों का ध्यान तथा शुद्ध आत्म चिन्तवन करते हुए इस नवें गुणस्थान के नव विभागों में से पहिले में नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, आतप, उद्योत,

साधारण, स्थावर, सूक्ष्म, ये १३ नामकर्म की प्रकृतियां, और स्त्यानगृद्धि, प्रचलाप्रचला, निद्रानिद्रा, ये तीन दर्शनावरणीय कर्म की, एवं १६ कर्म प्रकृतियों का क्षय किया। दूसरे विभाग में ४ अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ और ४ प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ, एवं इन ८ मोहनीय कर्मप्रकृतियों का क्षय किया। तीसरे विभाग में नपुंसक वेद का, चौथे में स्त्री वेद का, पांचवे में हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा का, छटे में पुरुष वेद का, सातवें आठवें और नवें विभाग में क्रम से संज्वलन क्रोध, मान, और माया का क्षय किया। इस प्रकार श्री ऋषभ जिन ने नवें गुणस्थान में १३ नामकर्म की, ३ दर्शनावरणीय कर्म की, और २० मोहनीय कर्म की, एवं सर्व ३६ कर्म प्रकृतियों का क्षय किया।

(९) तत्पश्चात् सूक्ष्मसाम्पराय नामक दशम गुणस्थान में पहुँचकर मोहनीय कर्म की संज्वलन-लोभ नाम की शेष एक प्रकृति को भी क्षय कर दिया। और इस प्रकार मोहनीय कर्मरूपी अतिप्रचंड वैरी (सर्व कर्म प्रकृति रूपी

शत्रुओं का सेनापति या राजा) को पूर्णरूप से जीत कर महा शूरवीर श्री ऋषभ-जिन एक बलवान् सेनापति पर विजय प्राप्त किये हुए महायोद्धा की नाईं महान बली होगये । (मोहनीय कर्म की सर्व २८ + दर्शनावरणीय की नव में से केवल ३ + आयु कर्म की चार में से केवल ३ + नाम कर्म की ९३ मेंसे केवल १३ = ४७ कर्म प्रकृतियां क्षय कीं, जिनमें ३१ घातिया कर्मों की हैं और १६ अघातिया कर्मों की हैं)

(९) तदनन्तर श्री ऋषभजिन एकत्ववितर्क अवीचार नामक शुक्ल ध्यान के द्वितीय चरण द्वारा ११ वें गुणस्थान को उलंघकर "क्षीणमोह" (क्षीणकषाय) नाम के १२ वें गुणस्थान में जा पहुँचे । और इस गुणस्थान के उपान्त समय में (अन्तिम समय से पूर्व के समय में) निद्रा और प्रचला इन दो दर्शनावरणीय कर्म प्रकृतियों का क्षय किया और अन्त समय में चक्षुदर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधिदर्शन, केवल दर्शन, इन ४ दर्शनावरणीय का और मतिज्ञानावरणी, श्रुतज्ञानावरणी, और अवधिज्ञानावरणी, मनःपर्ययज्ञानावरणी और केवलज्ञानावरणी, इन ५ ज्ञानावरणीय का, तथा दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय, इन ५ अन्तरायकर्म-प्रकृतियों का एवं

१४ प्रकृतियों का क्षय किया और इस प्रकार इस गुणस्थान में सर्व १६ (२+१४) प्रकृतियों का (घातिया कर्म की रही सही १६ प्रकृतियों का) क्षय करके श्री ऋषभजिन ने सयोगकेवली नामक १३ वें गुणस्थान में चढ़कर परम पवित्र और त्रैलोक्यपूज्य "अर्हन्तपद" (अरहंतपद) प्राप्त कर लिया।

इस प्रकार सर्व ६३ (९+१+३६+१+१६ = ६३) प्रकृतियों को क्षय करने का क्रम है जिनमें चारों घातिया कर्मों की सर्व ४७ प्रकृतियां, आयु कर्म की चार में से ३ प्रकृतियां और नामकर्म की ९३ में से १३ प्रकृतियां हैं।

नोट ३—ध्यान—चित्त की वृत्ति को सब ओर से रोककर मुख्यता से किसी एक ही वस्तु में लगाना, सर्व प्रकार की चिन्ताओं को रोक कर एकाग्र होना, अथवा आत्मा का वह परिणाम या मनोवृत्ति जिसके द्वारा किसी पदार्थ का चिन्तवन किया जाय उसे "ध्यान" कहते हैं। योग, ध्यान, समाधि, धारोध, स्वान्तनिग्रह, अंतः संलीनता, ये सब ध्यान ही के पर्यायवाची नाम हैं। आर्त्त, रौद्र, धर्म, और शुक्ल

नाम के ४ भेद ध्यान के हैं जिनमें से पहिले दो अप्रशस्त और शेष दो प्रशंस्त हैं, अथवा पहिले दो "अशुभ" तीसरा "शुभ" और चौथा "शुद्ध" है। पहिले दो से पापबन्ध होता है अथवा कर्म की पापप्रकृतियों के अनुभाग और स्थिति में प्रबलता और पुण्य प्रकृतियों के अनुभाग और स्थिति में हीनता होती है। तीसरे से (धर्म ध्यान से) पुण्य बन्ध होता है अथवा कर्मकी पाप प्रकृतियों के अनुभाग और स्थिति में हीनता और पुण्य प्रकृतियों के अनुभाग और स्थिति में प्रबलता होती है तथा किसी किसी कर्म प्रकृति की उपशम व क्षय (सत्ता व्युच्छित्ति) भी होता है। चौथे से (शुक्लध्यान से) कुछ कर्म प्रकृतियों का उपशम और कुछ या सर्व का क्षय होता है। ध्यान के इन ४ भेदों में से प्रत्येक के चार चार मूल भेद व कई कई उत्तर भेद भी हैं *। इनमें से शुक्लध्यान का प्रथम भेद या प्रथम चरण पृथक्त्व-वितर्कवीचार ८ वें से ११ वें गुणस्थान तक, दूसरा चरण एकत्ववितर्क अवीचार १२ वें गुणस्थान में, तीसरा चरण "सूक्ष्म क्रिया-ऽप्रतिपात" १३ वें गुणस्थान के अन्तिम भाग में और चौथा चरण "व्युपरत क्रिया-निवृत्ति" १४ वें गुणस्थान में होता है।

*ध्यानके विशेष भेद व उनका स्वरूपादि जानने के लिये देखो 'श्री वृहत जैनशब्दार्णव' के पृष्ठ ३५, ३६, ३७, पर शब्द "अक्षरमातृका ध्यान" पृष्ठ ६६, ७० पर शब्द "अग्रचिन्ता" पृष्ठ २०४, २०५ पर शब्द "अजीवविचय" इत्यादि।

(१६) समवशरण रचना

(आदि पु० पर्व २२,२३)

शुभ मिती फाल्गुन कृ० ११ के पूर्वान्ह काल में जिस समय "ऋषभजिन" को त्रैलोक्यपूज्य "अरहन्तपद" प्राप्त हुआ उसी समय बिना तार की तार-बर्कों या विद्युत लहरों के समान प्राकृतिक रीति से जगतभर में निमिषमात्र के लिये आनन्दलहर व्याप्त होगई। जन्म समय के समान इस समय भी चारों अनुकाय के देवों को भगवान के कैवल्यपद पाने की सूचना मिल गई। उसी समय "सौधर्मेन्द्र" की आज्ञा से १२ योजन के व्यास का एक वर्तुलाकर गोल सभामंडप अनेक प्रकार की शोभा और चमत्कारादि युक्त रचा गया।

सर्व जाति के देव, मनुष्य और तिर्यंचों को इस देवोकृत सभामंडप में आकर भगवान के दर्शन, पूजन, स्तुति आदि करने और सत्यार्थ मोक्षमार्ग प्रकाशक धर्मोपदेश सुनने के लिये समानरूप से अवशरण (या अवसरण) मिलने तथा समता

भाव धारण करने का अवसर मिलने के कारण यह सभामंडप "**समवशरण**" या "**समवसरण**" नाम से प्रसिद्ध है ॥

इस समवशरण की समस्त भूमि इन्द्रनीलमणि (नीलम या मर्कतमणि) नामक रत्नमय थी। इस के चारों ओर गिर्दागिर्द रंग बरंगे अनेक प्रकार के रत्नों की धूलि से बनाया गया गोल कंकणाकार एक धूलिसाल नाम का घेरा था। इस घेरे के बाहरी ओर चारों दिशाओं में स्वर्णमय चार स्तम्भों पर रत्नों की मालायुक्त तोरण सुशोभित थे और अभ्यन्तर रत्नस्वर्णमय तीन कोट चारों दिशाओं के चार चार बड़े द्वारों युक्त थे। ये कोट क्रम से स्वर्ण, रजित और स्फटिकमणिमय थे। इन तीनों कोटों से कुछ दूर आगे समवशरण के ठीक मध्य भाग में स्वर्णमय सोलह कटनीयुक्त वैडूर्य मणि की बनी ३२ हाथ ऊँची एक पीठिका या वेदिका थी। जिस के ऊपर मध्य में स्वर्णमय १६ हाथ ऊँचा एक पीठ था। और इस पीठ के ऊपर तीन कटनीदार समस्त रत्नमय १६ हाथ ऊँचा एक तीसरा पीठ सुशोभित था जिसके ऊपर ६ सौ धनुष (२४ सौ हाथ) लम्बी चौड़ी और छह सौ धनुष से कुछ अधिक ऊँची अतिशय सुन्दर गोल दशों दिशाओं

को सुगन्धित करने वाली बड़ी ही मनोहर अतिशय सुन्दर एक गन्धकुटी की रचना थी। इसी के मध्य ४ हाथ ऊँचे सिंहासन से ४ अंगुल ऊपर अधर रत्नमय सिंहासन पर श्री जिनेन्द्र देव ऋषभ भगवान् पूर्वमुख विराजमान थे जिन के शिर पर अनेक रत्नों जड़ित छत्रत्रय (तीन छत्रों का समूह) मानों भगवान का त्रैलोक्यपति पद प्रत्यक्ष रूप से दर्शा रहा था और जिन के शिर पर यक्ष देव ६४ स्वेत चमर ढोल रहे थे ॥

इस वेदी की चारों दिशाओं में आकाश से बातें करने वाले बहुत ऊँचे स्वर्णमय चार मानस्तम्भ थे जिन के दर्शन मात्र से बड़े बड़े मानियों का भी मान गलित हो जाता था। उपरोक्त तीनों कोटों की प्रत्येक दिशा के तीनों महाद्वारों में को जा कर अभ्यन्तर भाग में पहुँचने के लिए पीठिका (वेदिका) पर्यन्त सीधी लम्बी एक एक महा-वीथी (पथ, रास्ता या सड़क) थी। चारों दिशाओं के चारों महाद्वारों को छोड कर उपरोक्त स्फटिकमणिमय अभ्यन्तर कोट से वेदिका पर्यन्त स्फटिकमणिमय १६ भित्तियां थीं, अर्थात् चारों दिशाओं की महा वीथियों को छोड़ कर प्रत्येक विदिशा में चार चार भित्तियां (दीवारें) थीं जिन

से चारों विदिशाओं में तीन तीन कोठे बन कर सब १२ कोठे बन गए थे। उन १६ दीवारों पर रत्नमय खम्बे खड़े थे। इन खम्बों पर स्फटिक मणिमय अतिशय शोभा युक्त श्री मंडप सुशोभित हो रहा था। यह मंडप गोलाकार एक योजन व्यास का अर्थात् एक योजन लम्बा चौड़ा था जिस के नीचे पूर्वोक्त पीठिका युक्त १२ कोठे थे। इन कोठों या सभाओं में पूर्व दिशा से दक्षिणादि दिशाओं की ओर को क्रम से (१) ८४ गणधर देव (भगवान के उपदेश ग्रहण की पूर्ण योग्यता रखने वाले महा मुनि बहुत बहुत से मुनिगण या मुनि समूह के अधिपति) व अन्य मुनिगण (२) कल्पवासी देवों की देवांगनायें (३) आर्यिका और श्राविका आदि सर्व मनुष्यनीयें, (४) ज्योतिषी देवों की देवांगनायें, (५) व्यन्तर देवों की देवांगनाएं, (६) भवनवासी देवों की देवांगनाएं, (७) भवन वासी इन्द्रादि देव, (८) व्यन्तर इन्द्रादि देव, (९) अपने इन्द्रों सहित ज्योतिष्क देव (१०) कल्पवासी इन्द्रादिक देव, (११) चक्रवर्ती आदि राजा महाराजा और सर्व साधारण मनुष्य, (१२) सिंह, गाय, बैल, हिरण सर्प आदि सर्व जाति के पंचेन्द्रिय पशु, ये १२ प्रकार के अगणित प्राणी परम हर्ष और सुख

पूर्वक बैठे परस्पर के ईर्षा, कलह, द्वेष, या जाति-विरोध आदि कुभावों को तजकर बड़े उत्कण्ठित हुए शान्तिभावयुक्तभगवान की अनक्षरी वाणी (दिव्यध्वनि) सुनते थे ॥

इन्द्राज्ञानुकूल कुवेर या धनपति द्वारा अनेकानेक शोभायुक्त निर्मापित उस समवशरण में इन्द्रादिक देवों ने अपनी अपनी सम्पूर्ण विभूति और नृत्यगानादि युक्त आकर प्रवेश किया और श्री मंडप में भगवान के सन्मुख पहुँच कर अति विनय पूर्वक भगवान की पूजा, स्तुति की और भगवान के चारों ओर अपने २ नियुक्त सभा-कोष्ठों में विनय सहित बैठ गए ।

केवलज्ञान उत्पन्न होने पर भगवान निम्नोक्त १० स्वयं प्राप्त अतिशयों से और १४ देवों द्वारा की हुई अतिशयों से तथा अष्ट प्रातिहार्यों से विभूषित हो गए :—

केवलज्ञान के १० अतिशय

(१) समवशरण को मध्य में दे कर उसकी सर्व दिशाओं में १०० योजन अर्थात ४०० कोस के विस्तार में सुकाल ।

(२) सिंहासन से चार अंगुल ऊँचो विराजना और पृथ्वी से इतने ही ऊँचो आकाश में विहार करना ।

(३) एक मुख होते हुए भी सभाजनों को चारों ओर भगवान का मुख अपने सन्मुख दीखना ।

(४) समवशरण में उपस्थित प्राणी मात्र के हृदयों में अदया का अभाव ।

(५) चेतन या अचेतन कृत सर्व प्रकार के उपसर्गों का अभाव ।

(६) भगवान के कवलाहार का अभाव ।

(७) सम्पूर्ण विद्याओं का ईश्वरत्व ।

(८) नख और केशों के बढ़ने का अभाव ।

(९) नेत्रों के पलक लगने का अभाव ।

(१०) शरीर की छाया पड़नेका अभाव ।

देवोंकृत १४ अतिशय

(१) भगवान की अनक्षरी वाणी का अर्द्धमागधी भाषा रूप पर्णवना ।

(२) उपस्थित जीवों में परस्पर मैत्री भाव ।

(३) सर्व दिशाओं या आकाश की निर्मलता ।

(४) छहों ऋतुओं के फल फूलों का एक साथ फूलना फलना ।

(५) एक योजन तक पृथ्वी का दर्पणवत निर्मल होना ।

(६) विहार के समय भगवान के चरणों के नीचे कोमल स्वर्ण कमलों का रखा जाना ।

(७—१०) विहार के समय जय जयकार का होना, अनेक प्रकार के वादित्रों का बजना, मन्द सुगन्धित वायु का चलना, सुगन्धित जल कणों की वर्षा होना ।

(११) भूमि कंटक रहित होना ।

(१२) प्राणियों के हृदय में आह्लाद और आनन्द का होना ।

(१३) धर्म चक्र आगे आगे चलना ।

(१४) धर्म चक्र के पीछे अष्ट मंगल द्रव्यों का आगे आगे चलना ।

अष्ट प्रातिहार्य

(१) अशोक वृक्ष (२) रत्नमय सिंहासन (३) त्रिछत्र (४) भामं-

डल (५) दिव्यध्वनि (६) पुष्पवृष्टि (७) ६४ चमर (८) दुन्दुभि वादित्र

नोट---पूर्वोक्त जन्म के १० अतिशय और चार घातिया कर्मों के नष्ट होने से प्रकट हुए चार अनन्त चतुष्टय, ये १४ उपरोक्त २४ अतिशय और ८ प्रातिहार्य से मिल कर श्री अर्हन्त भगवान के ४६ मुख्य गुण कहलाते हैं ॥

(१७) भरतेश की आयुधशाला में चक्र रत्नोत्पत्ति,

महल में पुत्र जन्म, भगवान ऋषभ को केवल ज्ञान प्राप्ति व उन का धर्मोपदेश, वृषभसेन आदि का दीक्षा ग्रहण और भगवान का विहार

(आदि पु० पर्व २४, २५)

श्री ऋषभदेव को केवलज्ञान उत्पन्न होने के शुभ समाचार जिस समय उन के बड़े पुत्र अयोध्यापति भरतराज ने एक धर्माधिकारी द्वारा सुने ठीक उसी समय उन्हें अपनी आयुधशाला में चक्र रत्नोत्पत्ति के समाचार शस्त्रशालाधिकारी द्वारा और पुत्रोत्पत्ति के समाचार कंचुकी द्वारा सुने। तीनों हर्ष दायक शुभ समाचारों को सुनकर और यह विचार कर कि सर्व सुखदायक हर्ष समाचारों और शुभ कार्यों का मूल एक धर्म ही है। अपने भ्रातृ आदि सहित बड़े हर्षयुक्त पहिले

अपने पूज्य पिता श्री ऋषभ देव के केवलज्ञान कल्याणक की पूजा वन्दना करने और उन का धर्मोपदेश सुनने के लिए गए। समवशरण में पहुँच कर भगवान की पूजा वन्दना और १०८ नामों से बड़ी भक्ति के साथ स्तुति की।

पश्चात् बहुतही विनयपूर्वक मनुष्योंके कोष्ठ में बैठकर भगवान्से उनकी अनक्षरी दिव्य वाणी द्वारा षटद्रव्य, सप्त तत्व, नव पदार्थ आदि का लक्षण, भेद और स्वरूपादि सुने और अतिशय आनन्दित होकर सम्यग्दर्शन की परम विशुद्धि, निर्दोष पंचाणुव्रत और सप्तशील धारण किए।

उसी समय पुरिमतालाधिपति "**वृषभ सेन**" ने जो भरत महाराज का लघु भ्राता था भगवान का धर्मोपदेश सुन कर मुनिदीक्षा ग्रहण की और भगवान ऋषभ का प्रथम गणधर हुआ। कुरुदेशाधिपति "**सोम प्रभ**" और "**श्रेयांस**" तथा अन्य भी कई राजा दीक्षित हो हो कर गणधर बने। भरतेश की छोटी बहिन "**ब्राह्मी**" दीक्षा लेकर आर्यिकाओं में मुख्य **प्रथम गणिनी** बनी। पश्चात् भगवान ऋषभ की दूसरी पुत्री बाहुबली की लघु सहोदरा "**सुन्दरी**" ने भी विरक्त होकर आर्यिका के व्रत ग्रहण कर लिए। इनके अतिरिक्त और भी अनेक राजा

और राजपुत्रियों ने संसार-देहभोगों से विरक्त होकर भगवान के समीप ही दीक्षा ग्रहण की। उसी समय श्रावक के व्रत ग्रहण करके "श्रुतकीर्त्ति" नामक एक गृहस्थ **प्रथम श्रावक** बना और "**प्रियव्रता**" नाम की एक स्त्री **प्रथम श्राविका** हुई। **भरतराज** के एक लघु भ्राता "**अनन्तवीर्य**" ने भी संसार का यथार्थ स्वरूप भले प्रकार समझ कर और उस की असारता व क्षणभंगुरता पर विचार कर के अतिशय पवित्र भावों से उसी अवसर पर मुनिव्रत धारण कर लिये जिसने अपने शुद्ध परिणामों द्वारा शीघ्र ही सर्व कर्मों पर विजय पाकर इस वर्तमान अवसर्पिणी काल में **सब से प्रथम मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति** की। इनका गृहस्थावस्था का नाम "महासेन" था (देखो पृ० ६४)।

इन सर्व के अतिरिक्त जिन चार सहस्र राजाओं ने भगवान के साथ साथ बिना समझे केवल भक्तिवश मुनिवेष धारण किया था और पीछे मुनिवेष से भ्रष्ट हो गये थे उनमें से केवल भरतराजके पुत्र "मारीचि" को छोड़कर अन्य सर्व ने ही जीवादि तत्वोंका स्वरूप भले प्रकार अवधारण करके फिरसे मुनिदीक्षा ग्रहण करली।

तद्नन्तर चक्ररत्न की पूजा तथा पुत्रजन्मोत्सव मनाने के विचार से जब भरत महाराज अपने बन्धु वर्गादि सहित अयोध्यापुरी में लौट आये और भगवान् की दिव्य ध्वनि बन्द हुई तो सौधर्मेन्द्र ने अतिशय भक्ति में रत होकर और बार-म्वार नमस्कार करते हुए (१) श्रीमान्, (२) स्वयंभू, (३) वृषभ, (४) शंभव, (५) शंभु, (६) आत्मभू, (७) स्वयंप्रभ, [८] प्रभु, [९] भोक्ता, [१०] विश्वभू, [११] अपुनर्भव, [१२] विश्वात्मा, [१३] विश्वलोकेश, [१४] विश्वतश्चक्षु, [१५] अक्षर, [१६] विश्ववित्, [१७] विश्वविद्येश, [१८] विश्वयोनि, [१९] अनश्वर, [२०] विश्वदृश्वा, [२१] विभु, [२२] धाता, [२३] विश्वेश, [२४] विश्वलोचन, [२५] विश्वव्यापी, [२६] विधु, [२७] वेधा, [२८] शास्वत, [२९] विश्वतोमुख, [३०] विश्वकर्मा, [३१] जगज्ज्येष्ठ, [३२] विश्वमूर्ति, [३३] जिनेश्वर, [३४] विश्वदृक, [३५] विश्वभूतेश, [३६] विश्वज्योति, [३७] अनीश्वर, [३८] जिन, [३९] जिष्णु, [४०] अमेयात्मा, [४१] विश्वरीश, [४२] जगतपति (४३) अनन्तजित, [४४] अचिन्त्यात्मा, [४५] भव्यबन्धु, [४६] अबन्धन, [४७] युगादिपुरुष, [४८] ब्रह्मा, (४९) पंचब्रह्ममय, (५०) शिव, इत्यादि (१००८) धर्मसाम्राज्यनायक पर्यंत, अष्टाधिक

सहस्र सार्थक नामों द्वारा भगवान् की स्तुति की । इस प्रकार इन्द्र द्वारा स्तुति किये जा चुकने के पश्चात् भगवान् ऋषभ का अनेक देशों में विहार हुआ ।

जहां जहां पहुँच कर भगवान् का धर्मोपदेश होता था वहां २ पूर्वोक्त सम्पूर्ण रचनायुक्त इन्द्राज्ञानुकूल समवसरण रचा जाता था । इस प्रकार विहार करते और धर्मोपदेश द्वारा अनेकानेक भव्य आत्माओं को मोक्ष मार्ग पर लगाते हुए अन्त में श्रीऋषभदेव भगवान "**कैलास**" पर्वत पर पहुँचे ।

(१८) भरत चक्रवर्ती की दिग्विजय

(आदि पुराण पर्व २६ से ३२ तक)

भगवान् के समवसरण में मोक्षमार्ग प्रकाशक धर्मोपदेश को श्रवण कर के जब अयोध्यापति भरत महाराज सकुटुम्ब अयोध्या में लौट आये तो उन्होंने विधि-पूर्वक पहिले चक्ररत्न की पूजा की और फिर पुत्र का जन्मोत्सव यथायोग्य दान सन्मान और नृत्य गानादि सहित मनाया ।

पश्चात् शरद ऋतु के प्रारम्भ होजाने पर भरत चक्रेश ने सम्पूर्ण भरत क्षेत्र

के एक आर्य और पांच म्लेच्छ, एवं षट खंडों को अपने अधिकार में लाने के लिये चक्ररत्न को आगे कर दिग्विजय की तइयारी की।

अयोध्या से चल कर क्रम से पूर्व, दक्षिण, और पश्चिम दिशाओं के राजाओं को अपने आधीन किये तथा इन दिशाओं के समुद्रपति मागध, वरतनु, और प्रभास नामके व्यन्तर देवों को भी अपने सेवक बना कर भरत महाराज उत्तर दिशा की ओर पहुँचे और सिन्धु नदी के किनारे किनारे जाकर "विजयार्द्ध" पर्वत के निकट जा पहुँचे। इस पर्वत के ९ शिखरों में से मध्य के पांचवें शिखर के समीप पहुँचने पर विजयार्द्धदेव ने इन की आधीनता स्वीकार कर के उनका अभिषेक किया। पश्चात् विजयार्द्ध पर्वत ही पर उस की पश्चिम दिशाको कुछ हट कर इस पर्वत की पश्चिम गुफा के समीप के वन में कुछ दिनों सेना का पड़ाव रहा जहां ठहर कर विजयार्द्ध की उत्तर दिशाके उत्तर भरत को जीतने की तैयारियां की गईं। अनेक राजा भेंटे ले ले कर अपनी सेना सहित भरत की सेवा में आये। यहीं पर "कुरुदेश" के राजा सोमप्रभ के पुत्र "जय कुमार" भी आकर भरत से मिले और विजयार्द्ध के एक ऊँचे शिखर पर रहने वाला "कृतमाल"

नामक देव भी भरत की आज्ञा में आगया जिसने विजयार्द्ध की तमिस्रा नामक पश्चिम गुहा का मार्ग भरतको वताया। पर्वत की चौड़ाई समान ५० योजन लम्बी और ८ योजन ऊँची १२ योजन चौड़ी इस गुफा का द्वार खोलने के लिये भरत ने अपने सेनापति को भेजा। सेनापति ने "भरत चक्रवर्ती की जय" ये वाक्य बोल कर गुफा का द्वार दंडरत्न से खोला। इस गुफा से निकली हुई उष्णता जब तक शान्त हो उस सेनापति ने चक्रवर्ती की आज्ञा से पश्चिम म्लेच्छखंड में विजय प्राप्त की। ६ मास में "तमिस्रा" गुफाकी उष्णता शान्त होजाने पर पुरोहित और सेनापतिने काकिणी और चूड़ामणी इन दो रत्नों की सहायता से गुफा की एक दीवार पर सूर्य और दूसरी दीवार पर चन्द्रमाके कृत्रिम प्रतिविम्ब एक एक योजन की दूरी पर वनाकर गुफा के महा अन्धकार को दूर किया, तव चक्रवर्तीने सेनासहित उसमें प्रवेश किया। गुफाका अर्द्धभाग तय होजाने पर "निमग्नजला" और "उन्मग्नजला" नामकी दो नदियां मिलीं। जो आगे वहकर सिन्धु नदीसे जा मिलती हैं। सिलावटरत्न "भद्रमुख" द्वारा इन नदियों पर पुल

बनाये जाने पर सेना आगे बढ़ी । गुफा को पार करने के पश्चात् पश्चिम दिशा के उत्तर म्लेच्छ खंड को भी चक्रवर्ती ने थोड़े ही दिनों में जीत लिया । इस खंड में "**चिलात**" और "**आवर्त**" नाम के दो राजा अधिक बलवान थे जिन्हों ने अपने कुल देव "**मेघमुख**" "**नागमुख**" की सहायता से चक्रवर्ती का सामना किया । मेघमुख ने पानी की इतनी अधिक वर्षा की कि उसमें भरत की सेना सब डूबजाती यदि तुरन्त ही नीचे १२ योजन विस्तारका चर्म रत्न बिछाकर और ऊपर इतना ही बड़ा छत्र रत्न लगाकर सारी सेना को सुरक्षित न कर लिया जाता । इन दोनों रत्नोंसे एक ऐसा अंडाकार तम्बू बन गया जिसमें सारी सेना चक्रादि रत्नों के प्रकाश में पूर्ण रूप से सुरक्षित रही । भीतर सेनापति और बाहर हस्तिनापुर नरेश श्रेयांस का पुत्र '**जयकुमार**' रक्षा करते रहे । चक्रवर्तीकी आज्ञासे "गणबद्ध" जाति के व्यन्तर देवों ने मेघमुख और नागमुख को निर्बल किया और 'जयकुमार' ने अपने दिव्यास्त्रों से उन्हें दूर भगा देने में इस अवसर पर अपनी बुद्धि-पटुता का और पराक्रम नैपुण्य का पूर्ण परिचय दिया जिस के उपलक्ष में चक्रवर्ती

ने प्रसन्न होकर उसे "मेघेश्वर" पद देकर सन्मानित किया। सप्त अहोरात्रि सेना को तम्बू में रहना पड़ा। अन्त में दोनों म्लेच्छ राजा परास्त होकर चक्री की आज्ञा में आ गए।

पश्चात् सिन्धु नदी के किनारे किनारे चल कर मार्ग के राजाओं को जीतते हुए और "सिन्धुकुण्ड" के समीप "सिन्धुदेवी" से आदर पूर्वक भेंट में "भद्रासन" पाकर महाराज भरत 'हिमवान' पर्वत के 'हिमवत्' नामक शिखर पर जा पहुँचे। यहां के वासी अनेक व्यन्तर देवों के अधिपति हिमवान् नामक देव को अपना आज्ञाकारी बना कर "वृषभाचल" पर्वत पर आए। यह पर्वत हिमवान पर्वत के समीप ही उस की दक्षिण दिशा में उत्तरी तीन म्लेच्छ खण्डों में से मध्य के म्लेच्छ खण्ड में स्थित है। जिस समय भरत ने अपनी दिग्विजय की स्मृति रूप उस पर्वत की स्फटिक मणि के समान निर्मल शिलामय किसी दीवार पर अपनी प्रशस्ति (नामादि सूचक लेख) लिखना चाहा तो वहां अपने समान अगणित चक्रवर्तियों की प्रशस्तियां लिखी पाईं। जब अपना नाम लिखने को उसे समस्त पर्वत पर कोई स्थान खाली न मिला तो यह देखकर उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ और उसका यह अभि-

मान जाता रहा कि मैंने ही इन छहों खण्डों पर विजय प्राप्त की है। उस ने स्वीकार कर लिया कि "इस पृथ्वी पर मुझ सारखे अनेकानेक चक्रवर्ती होचुके हैं"। अब लाचार होकर उसने किसी अन्य चक्रवर्ती की लिखी प्रशस्ति मिटा कर अपनी प्रशस्ति कांकिणी रत्न से निम्न प्रकार लिखी और लिखते समय मन में इस समस्त जगत की स्वार्थ परायणता का भी भले प्रकार अनुभव किया :—

"स्वस्ति श्री इक्ष्वाकु कुल रूपी आकाश में चन्द्रमा के समान उद्योत करने वाला चारों दिशाओं की पृथ्वी का स्वामी मैं भरत हूँ। मेरी माता के सौ पुत्रों में से मैं एक ज्येष्ठ पुत्र हूँ। मैं राज्य लक्ष्मी का स्वामी हूँ। मैंने समस्त देव, विद्याधर और राजाओं को नवाया है। मैं प्रजापति श्री वृषभ देव का पुत्र १६ वाँ मनु या कुलकर हूँ। मान्य, धीर, शूरवीर, पवित्र, उदारबुद्धि, धर्मशरीरी और चक्रवर्तियों में मुख्य (वर्तमान अवसर्पिणी कालका प्रथम चक्रवर्ती) हूँ। जिसके जल और स्थल दौनों में चलने वाले १८ करोड़ अश्व हैं। जिस की समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाली सेना में ८४ लाख मदोन्मत्त हाथी हैं, जो श्री

नाभिराय का पौत्र और श्रीऋषभ भगवानका पुत्र है और जो छहोंखण्डों से सुशोभित सम्पूर्ण पृथ्वीका पालक है ऐसे मुझ "**भरत**" ने लक्ष्मी को चंचल समझ कर जगत में फैलने वाली कीर्ति इस पर्वत पर स्थापित की है ।"

इस अर्थ सूचक अपनी प्रशस्ति लिखकर भरत महाराज हिमवान् पर्वत के उस स्थान पर पहुँचे जहां "**पद्मद्रह**" से गंगा नदी निकलकर पूर्व दिशाको बहती है । यहां की निवासिनी "गंगा देवी" नामक व्यन्तरी से सत्कार पूर्वक एक दिव्य सिंहासन भेट में पाकर महाराज भरत पूर्व दिशा की ओर विजयार्द्ध पर्वत की तलहटी में आकर ठहरे और पश्चिमकी गुफा के समान विजयार्द्ध की "**कांडक प्रपात**" नामकी पूर्व गुफा को खोला । जबतक इस गुफा की उष्णता ६ मास में शान्त हुई भरत महाराज विजयार्द्ध की उस तलहटी ही में ठहरे रहे । इसी समय में भरत की आज्ञानुसार सेनापति ने पूर्वदिशा के म्लेच्छखंड पर चक्री की विजय-पताका फैराई । और विजयार्द्ध के इस पूर्व विभाग के भी विद्याधर राजा अपनी २

पुत्रियां तथा हाथी, घोड़े और रत्नादि अनेक प्रकार की भेंटे देदेकर चक्रवर्ती से मिले। यहां ही पर विद्याधरों के अधिपति "नमि" "विनमि" ने समस्त गुण सम्पन्न अपनी बहिन "सुभद्रा" महाराज भरत को परणाई।*

पश्चात् गुहा की उष्णता शान्त होने पर महाराज भरत ने सेना सहित उसमें प्रवेश किया उसके दक्षिण द्वार पर पहुँचकर वहां के "नाट्यमाल" नामक व्यन्तर देवको अपना सेवक बनाया और मार्ग के राजाओं को अपने अधिकार में लेते हुए अपनी राजधानी अयोध्यापुरी की ओर को लौटे। मार्ग में कैलाश पर्वत पड़ा जहां ठहर कर भरतराज श्रीऋषभदेव भगवान के समवसरण में गये और उनकी पूजा वन्दना स्तुति आदि करके धर्मोपदेश सुना।

भरत चक्रवर्ती को भरतक्षेत्र के छहों खंड की विजय प्राप्त करने में लगभग ६० सहस्त्र वर्ष लगे थे॥

---

* ये नमि, विनमि श्री ऋषभदेव भगवान के साले थे और "सुभद्रा" के विवाह देने से भरतमहाराज के भी साले बनगये। अर्थात् नमि विनमि की एक बहन भरतराज की माता थी और दूसरी बहन भरतराज की स्त्री (पटरानी)॥

(१६) बाहुबली से भरत का युद्ध, बाहुबली का दीक्षा ग्रहण और भरत चक्रवर्ती का वैभव ।

(आदि पु० पर्व ३४-३७)

कैलाश से प्रयाण करके महाराज भरत जब अपनी राजधानी अयोध्यापुरी के समीप आगये और नगर में प्रवेश करने लगे तो चक्ररत्न के रुकजाने से बड़े आश्चर्य के साथ उसके रुकजाने का कारण "बुद्धिसागर" नामक अपने पुरोहित रत्न से पूछा। पुरोहित ने कहा कि यद्यपि आप सम्पूर्ण भरत क्षेत्र की दिग्विजय कर चुके हैं तथापि आपकी दिग्विजय में कुछ अपूर्णता है। वह अपूर्णता यह है कि आपके लघु भ्राता आपकी आज्ञासे विमुख हैं। दिग्विजय में जबतक कुछ भी अपूर्णता रहेगी, चक्ररत्न राजधानी में प्रवेश न करेगा। यह सुनकर पहले तो भरतराज को अपने भाइयों पर कुछ क्रोध आया परन्तु पुरोहित के समझाने पर शान्त होकर भाइयों को अपनी आज्ञा में लाने के लिये चतुरदूत उनके पास भेजे। भाइयों ने भरतराज की आज्ञा में रहकर राज्य करना स्वीकार न किया किन्तु बाहुबली के अति-

रिक्त सब होने अपनी मानमर्यादा की रक्षार्थ अपने परम पूज्य पिता की अनुमति लेकर और उनसे प्राप्त किये हुए राज्य को जीर्ण तृणवत असार जानकर तुरन्त त्याग दिया और परम दिगम्बर मुनि होगये।

बाहुबली ने न तो भरतराज की आज्ञा में रहना ही स्वीकृत किया और न मुनिदीक्षा ही ग्रहण की किन्तु दूतद्वारा समझाये जाने पर भी युद्ध के लिये तईयार होगये।

दोनों पक्ष के मंत्रियों ने दो चरमोत्तम शरीरी भ्राताओं के युद्ध में अकारण सेना का रक्तपात किया जाना अनावश्यक और अयोग्य जानकर परस्पर भाई भाइयों में दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध, और मल्लयुद्ध, ये तीन युद्ध किये जाने निश्चित किये जिन्हें दोनों भ्राताओं ने स्वीकार किया।

सौभाग्यवश तीनों ही युद्धों में छोटे भाई बाहुबली को विजय प्राप्त हुई। और अन्तिम मल्लयुद्ध में बाहुबली ने भरतको पृथ्वी पर न गिराकर अपने बड़े भ्राताका अधिक मान मर्दन न किया किन्तु उठाकर कन्धेपर बिठालिया। इस प्रकार तीनों युद्धों में पराजित होने से क्रोधके आवेश में आकर भरत ने बाहुबली पर चक्र

चलाया ! परन्तु देवोपनीत चक्ररत्न चक्रीकुल के किसी व्यक्ति का घात नहीं करता। अतः वह चक्र वाहुवली की प्रदक्षिणा देकर उसके सन्मुख आकर ठहर गया। भरत का ऐसा कुप्रयत्न देखकर सभी ने मनमें उसके इस कार्य की निन्दा की और वाहुवली ने भरतराज को यह कहते हुए कि आप वास्तव में बड़े बलवान हैं सत्कार पूर्वक उच्चासन पर बैठाया।

धीर वीर वाहुवली अपने ज्येष्ठ भ्राता का यह निन्द्य कृत देखकर इस क्षण-भंगुर असार संसार की अनित्यता का विचार मन ही मन में बारम्बार करने लगे। अन्त में भरत से यह कहकर कि "**इस पृथ्वी की यह अचल राज्य सम्पदा सदैव आप ही भोगिये, मुझे अब यह रुचिकर नहीं है**" अपने बड़े पुत्र "**महाबल**" को अपना राज्य सिंहासन दे दिया और स्वयम् अपने पूज्य पिता "श्री ऋषभदेव भगवान्" के चरणों का आराधन करते हुए मुनिदीक्षा धारण करली। एक वर्ष तक अखंड **प्रतिमायोग** धारण करने की अर्थात् एक स्थान में निराहार खड़े रहकर ध्यान करने की प्रतिज्ञा लेली।

क्रोध शान्त होजाने पर भरत महाराज को अपनी उस दुष्कृति पर भारी, पश्चाताप हुआ। पश्चात् राजधानी अयोध्यापुरी में पहुँचने पर देवों और विद्याधर आदि अनेक राजा महाराजाओं द्वारा भरतचक्रवर्ती का चक्रवर्तीराज्याभिषेक बड़े उत्सव और भारी समारोह के साथ किया गया। इस अवसर पर महाराज भरत ने सबही का दान सन्मानादि से यथायोग्य आदर सत्कार किया और भारी द्रव्यदान करके अपनी पूर्ण उदारता दिखाई।

इस समय षटखंडाधिपति भरत चक्रवर्ती की राज्य-सम्पत्ति में मुख्य मुख्य वस्तुएं निम्नोक्त थीं :—

(१) ८४ लाख हाथी, ८४ लाख रथ, १८ करोड़ घोड़े, ८४ करोड़ पियादे (पैदल सेना)।

(२) सम्पूर्ण भरत क्षेत्र की षट खण्ड पृथ्वी, षट खण्ड पृथ्वी के ३२ सहस्र देश, ३२ सहस्र (१८ सहस्र आर्य खण्ड के और १४ सहस्र म्लेच्छखण्ड के) मुकुटबन्ध राजाओं पर अखण्ड शासन, ७२ सहस्र विशाल नगर, ९६ करोड़

ग्राम, ९९ सहस्र द्रोणमुख (समुद्र तट के स्थान), ४८ सहस्र रत्नों की खान युक्त पत्तन, १६ सहस्र खेट (एक ओर पर्वत और दूसरी ओर किसी नदी से घिरे हुए कोट परकोटा व खाई युक्त नगर), कुभोग भूमिज मनुष्यों से भरे समुद्र मध्य के ९६ अन्तरद्वीप, १४ सहस्र संवाह अर्थात् पर्वतों पर वसने वाले नगर, ७०० कुक्षिवास अर्थात जहां म्लेच्छ लोग रत्नादिक के व्यापारार्थ आकर निवास करें ऐसे स्थान, २८ सहस्र गहन वन, एक लाख करोड़ (१० खर्व) हल, ३ करोड़ गोशालायें, एक करोड़ चावल पकाने के बड़े बड़े हन्डे, ४८ करोड़ खजायें, ३२ सहस्र नाटक भूमि, १२ योजन तक शब्द पहुँचाने वाली आनन्दनी नामक भेरियां, १२ विजय घोप नाम के दुन्दुभि वादित्र (नगाड़े या नक्कारे), २४ गम्भीरावर्त्त नाम के शङ्ख ।

(३) अनेक जाति के अगणित वादित्रों से पूर्ण "काल निधि", आजीविका सम्बन्धी असि मसि कृषि आदि षट कर्मों के साधन रूप अटूट सामग्री से पूर्ण "महाकाल निधि", शय्या, आसन, डेरे तम्बू आदि देनेवाली 'नैःसर्प निधि", समस्त जाति के धान्य और षट रस सामग्री दायक 'पाण्डुक निधि', सर्व प्रकार के

वस्त्रदायिनी 'पद्मनिधि', अनेक प्रकार के दिव्य आभरण देने वाली 'पिङ्गल निधि', अपरमित नीति शास्त्र और अस्त्र शस्त्रों से परिपूर्ण 'माणव निधि', इच्छानुसार सुवर्ण दायिनी 'शङ्ख निधि', और नाना प्रकार के रत्न देने वाली 'सर्व रत्न निधि', ये **नव निधियां** जिन में से प्रत्येक के रक्षक एक एक सहस्र गणबद्ध जाति के व्यन्तर देव थे। इन सर्व का उद्भव अयोध्यापुरी ही में चक्रवर्ती के महान पुण्योदय से हुआ। ये निधियां पहियोंदार बड़ी बड़ी गाड़ियों के आकार की थीं जो प्रयाण के समय चक्रवर्ती के सेना दल के साथ साथ रहती थीं।

(४) सुदर्शन नामक चक्रत्न, सूर्यप्रभ नामक छत्र रत्न, चंडवेग नामक दंडरत्न, सौनन्द नामक खड्गरत्न, चूड़ामणि नामक चिन्तामणिरत्न, वज्रमय नामक चर्मरत्न, चिंता दमनी नामक काकिणीरत्न, यो सात अचेतनरत्न, और अयोध्य नामक सेनापति, बुद्धिसागर नामक पुरोहित, कामवृष्टि नामक गृहपति, भद्रमुख नामक शिलावट, विजयपर्वत नामक हाथी, पवनंजय नामक घोड़ा, और सुभद्रा नामक पटरानी, यो सात सचेतन रत्न एवं सर्व १४ रत्न। इनमें से चक्र, छत्र, दंड, खड्ग, ये चार रत्न चक्रवर्ती की आयुधशाला में, और मणि चर्म व काकिणी, यो तीन श्रीग्रह में

उत्पन्न हुए। सेनापति, पुरोहित, गृहपति और शिलावट, ये चार रत्न अयोध्या में और हाथी, घोड़ा व स्त्री, ये ३ रत्न दिग्विजय के समय विजयार्द्ध पर्वतपर प्राप्त हुए। इन १४ रत्नों में से प्रत्येक रत्न के रक्षक भी एक एक सहस्र गणबद्ध जाति के व्यन्तर देव थे।

(५) भरत चक्रवर्ती की ९६ सहस्र रूपवान, गुणवान, शीलवान और पतिव्रता रानियां थीं, जिनमें से ३२ सहस्र रानियां उच्चकुली भूमिगोचरी राजाओं की, ३२ सहस्र विद्याधर राजाओं की, और ३२ सहस्र म्लेच्छ देशों के अधिपतियों की राजपुत्रियां थीं।

(६) भरत महाराज के सुडौल और अभेद्य शरीर का संस्थान **समचतुरस्र** और संहनन **वज्रवृषभ नाराच** था। मनोज्ञ शरीरकी कान्ति तपाये स्वर्ण समान थी। उनके सुन्दर शरीर में ६४ शुभ लक्षण थे। उन्हें पृथक वैक्रियक शक्ति प्राप्त थी, अर्थात् वह इस शक्ति से निजात्म-प्रदेशों द्वारा अपने मूल शरीर को ज्यों का त्यों विद्यमान रखते हुए उससे पृथक अपने अनेक अन्य शरीर भी यथा इच्छा बना

सकते थे। उनका शारीरिक बल छहों खंडों के ३२ सहस्र राजाओं के समुच्चय-रूप सम्पूर्ण बल से भी अधिक था।

(वैक्रयिक शक्ति और वैक्रयिक ऋद्धि का पारस्परिक अन्तर, उनके पृथक्, अपृथक् व अणिमा, महिमा आदि सर्व भेदादि जानने के लिए देखो "श्री वृहत् जैनशब्दार्णव", प्रथम खंड के पृष्ठ २७०, २७१, ४२, ४३ आदि)।

(७) भरत चक्रवर्ती की पटरानी सुभद्रा में शारीरिक बल इतना था कि वह कड़े से कड़े हीरा आदि रत्नों को अपनी अँगुलियों की चुटकी से चूर्ण करदेती थी।

(८) भरतराज के अङ्गरक्षक गणवद्ध जाति के व्यन्तर देव एक सहस्र थे।

(९) भरत महाराज के दिव्य भोजन का नाम "महाकल्याण", लेय (चाटने योग्य) पदार्थों का नाम "अमृत गर्भ", खाद्य पदार्थों का नाम "अमृतकल्प", और पेय (पीने योग्य) पदार्थों का नाम "अमृत" था

(१०) भरत चक्रवर्ती के सर्व ऋतुओं में सुखदाई महल का नाम "वैजयन्त", महल के कोट का नाम "क्षितिसार", राजधानी अयोध्या के मुख्य बड़े द्वार का नाम

"सर्वतोभद्र", डेरे खड़े किए जाने के स्थान का नाम "नद्यावर्त", सभाभूमि का नाम "दिक्स्वस्तिका", मणिमय छड़ी का नाम "सुविधि", नृत्यशाला का नाम "वर्द्धमान", भांडागार का नाम "कुवेरकान्त", चाँदनीभवन का नाम "पुष्करावर्ति", ग्रीष्म ऋतु में सूक्ष्म जलकण वरसा कर बड़ी सुहावनी और आनन्द दायिनी ठंडक देनेवाले राजभवन का नाम "घर्मान्त", वर्षा ऋतु में सुख पूर्वक रहने योग्य महल का नाम "गृहकूटक", शीतकाल में निवास करने योग्य भवन का नाम "सुखद", सर्व दिशाओं के अवलोकनार्थ भवन का नाम "गिरिकूटक", मंजनागार (स्नानभवन) का नाम "जीमूत", कोठार का नाम "वसुधारक", माला का नाम "अवतंसिका", तम्बू का नाम "देवरम्य", शय्या का नाम "सिंहवाहिनी", सिंहासन का नाम "अनुत्तर", चमरों का नाम "अनुपमान", छत्र का नाम "सूर्यप्रभ", कवच का नाम "अभेद्य", धनुष का नाम "वज्रकांड", वाण का नाम "अमोघ", शक्ति का नाम "वज्रतुण्डा", भाले का नाम "सिंहाटक", छुरी का नाम "लोहवाहिनी", कणव-अस्त्र का नाम "मनोवेग", खेट-अस्त्र का नाम "भूतमुख", असि (तलवार) का नाम "सौनन्दक", चक्र का नाम "सुदर्शन", मणिकुंडलों का नाम

"विद्युतप्रभ", रत्नमय कड़ों का नाम "वीराङ्गद", खड़ाऊँओं का नाम "विषमोचिका", रथ का नाम "अजितंजय", अश्व (घोड़ा) का नाम "पवनंजय", हाथी का नाम "विजयपर्वत" था, इत्यादि ॥

भरत चक्रवर्ती ने अपने महान पुण्योदय से उपर्युक्त परम विभूति और राज वैभव का स्वामी हो कर चिरकाल सुखानुभव किया। उधर जब इन के लघु भ्राता "**बाहुबली**" की प्रतिमायोग धारण करने की एक वर्ष की महा कठिन प्रतिज्ञा पूर्ण हुई उसी अवसर पर भरतराज उन के दर्शनार्थ गए। बड़ी भक्ति से उनके चरणों की पूजा की। इस समय तक बाहुबली के हृदयस्थ जो यह "**प्रेमशल्य**" थी कि "युद्ध के समय मेरे बड़े भाई भरत को मेरे द्वारा अपमानित होने का भारी कष्ट पहुँचा था" वह सब भरत के पूजा करते ही हृदय से निकल गई। इस शल्य के निकलते ही शुक्ल ध्यान के बल से एक अन्तर्मुहूर्त ही में उन्हें लोकालोक का प्रकाशक **केवलज्ञान** प्राप्त हो गया। और इस लिए अपने हृदय में उत्पन्न हुआ अति आनन्द मनाने के लिए भरतराज ने गाढ़ भक्ति के साथ श्री बाहुबली महाराज

का फिर पूजन और वारम्बार स्तवन किया। तभी इन्द्रादिक देवों ने भी आकर भगवान बाहुबली का स्तवन पूजनादि किया। पश्चात् भगवान बाहुबली ने धर्मोपदेश दिया और अनेक देशों में विहार करते हुए अन्त में कैलाश पर्वत पर पहुँच कर वहीं से निर्वाण पद प्राप्त किया॥

नोट—इस वर्तमान अवसर्पिणी काल में एक ही स्थान में पूरे एक वर्ष तक निराहार प्रतिमायोग धारण किये खड़े रह कर अति कठिन तपश्चरण करने में "श्री बाहुबली जी" ही ने सब से अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की। इन्हों ने राज्य त्याग कर मुनिदीक्षा लिये पीछे कभी एक बार भी आहार ग्रहण नहीं किया॥

(२०) ब्राह्मणवर्णोत्पत्ति और उन के पालने योग्य गर्भान्वय आदि १०८ क्रियायें व १० द्विजाधिकार

(आदि पुराण, पर्व ३८, ३९, ४०)

सर्व मनुष्यों की आजीविका का कार्य सुचारु रूप से चलते रहने के लिए क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन तीन वर्णों की स्थापना तो "श्री ऋषभ भगवान" अपने राज्याभिषेक से पूर्व ही कर चुके थे। अब भरतेश्वर को अपने अटूट धन का सदुपयोग

करने अर्थात् योग्य पुरुषों के दान सन्मान में व्यय करने के लिए एक अन्य वर्ण को स्थापन करने की आवश्यक्ता प्रतीत हुई। अतः उसने एक बड़ी उत्तम विधि से सुशील, दयालु, विवेकी, और सदाचारी व्रती पुरुषों को चुनकर रत्नत्रय धर्म और एकादश प्रतिमा के चिन्ह या संकेत रूप उनके कंठ में बड़े आदर सत्कार पूर्वक ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत, जनेऊ) पहनाए, अर्थात् जो एक प्रतिमाधारी थे उन्हें एक एक तार की तीन लड़ियों के, जो दो प्रतिमाधारी थे उन्हें दो दो तार की तीन लड़ियों के, जो तीन प्रतिमाधारी थे उन्हें तीन तीन तार की तीन लड़ियों के जो चार प्रतिमाधारी थे उन्हें चार चार तार की तीन लड़ियों के, इत्यादि इसी रीति से जो ११ प्रतिमाधारी थे उन्हें ग्यारह ग्यारह सूत्र के (तार के) तिलड़े "ब्रह्मसूत्र" पहनाए और इसी लिए उन के वर्ण को "ब्राह्मण वर्ण" के उत्कृष्ट नाम से नामाङ्कित किया। (पर्व ३८।२२)

एक बार गर्भ से जन्म पाने और दूसरी बार शास्त्रोक्त प्रशस्त क्रियाओं से नवीन जन्म धारण करने के कारण यह वर्ण "द्विज" नाम से भी प्रसिद्ध हुआ।

भरत महाराज ने इन ब्राह्मण या द्विजों को अपनी अपनी व्रत स्वरूप प्रतिमाओं

अर्थात् प्रतिज्ञाओं में पूर्ण रूप से सुदृढ़ रखने के लिए "श्री उत्तराध्ययन" नामक सप्तम अङ्ग के अनुसार निम्नोक्त षट कर्म यथा विधि नित्य प्रति पालने की शिक्षा दी :—

(१) **इज्या**, अर्थात् नित्यमह, अष्टान्हिकमह, चतुर्मुखमह, कल्पद्रुममह और ऐन्द्रध्वजमह, इन "**पंचमहायज्ञ**" को यथा अवसर करते रहने की और नित्यमह में देव शास्त्र गुरु पूजा आदि की विधि बताई।

(२) **वार्ता**, अर्थात् आजीविका सम्बन्धी असि, मसि, कृषि, वाणिज्य में से कोई एक कर्म यथा आवश्यक और अपने व्रत नियमादि के अनुकूल यथा योग्य बहुत ही संतोष वृत्ति के साथ गौण रूप से करने का उपदेश दिया।

(३) **दत्ति**, अर्थात् दया दत्ति, पात्र दत्ति, सम दत्ति, और सकल दत्ति, ये चार प्रकार का दत्ति (दान) से यथा अवसर और यथा आवश्यक महान पुण्य लाभ उठाने की शिक्षा दी।

(४) **स्वाध्याय**, अर्थात् वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय, धर्मोपदेश इन ५ भेद युक्त श्रुतज्ञान की आराधना का उपदेश दिया।

रक्षा । ५६ दिक्कुमारी देवियां ※ अपने अपने नियोगानुसार रात दिन माता की

(५) **संयम,** अर्थात् पंचेन्द्रिय और छटे मन को वश में रख कर "षटइन्द्रिय संयम" पालने और पंच स्थावर व छटे त्रस जीवों की रक्षार्थ अणुव्रतादि व्रत धारण कर के "षटकायिक प्राणि रक्षा संयम" पालने का मार्ग बताया।

(६) **तप,** अर्थात् इच्छानिरोधार्थ यथाशक्ति अनशनादि १२ प्रकार के तप में प्रवृत्त होना सिखाया।

भरत महाराज ने उन्हें सदाचार का संस्कार सन्तान प्रति सन्तान स्थिर रख सकने के लिये ५३ भेदरूप **गर्भान्वयक्रिया,** ४८ भेदयुक्त **दीक्षान्वयक्रिया,** और ७ प्रकार की **कर्त्रन्वयक्रियाएँ** भी मंत्रादि विधि सहित पूर्णरूप से समझाईं।

नोट—इन सर्व क्रियाओं के अलग अलग नामादि जानने के लिये देखो "श्री वृ० जैनशब्दार्णव" पृ० ७० ७१, २५४ अथवा मन्त्रादि सहित सम्पूर्ण विधि सविस्तार जानने के लिये देखो श्री आदि पुराण पर्व ३८, ३९, ४०

आत्मोन्नति व धर्म्म प्रभावनार्थ अपनी मानमर्यादा भले प्रकार स्थिर रखनेके लिये भरतेश्वर महाराज ने उन्हें निम्नोल्लिखित १० **"द्विजाधिकार"** पालन करने की भी शिक्षा दी:—

(१) अतिबालविद्या—बाल्यावस्था ही से विद्याभ्यास कराना ।

(२) कुलावधिक्रिया—अपने पवित्र कुल के आचार विचार आदि को सुरक्षित रखना ।

(३) वर्णोत्तमत्व—अपने पवित्र विचारों, पवित्र आचरणों और पवित्र क्रियाओं द्वारा अपने वर्णको अन्य वर्णों के मनुष्यों की दृष्टिमें भी सर्वोत्कृष्ट व सर्व श्रेष्ठ समझते रहने का भाव बनाये रखना ।

(४) पात्रत्व—अन्य वर्णों के मानवों के चित्त में अपने को (ब्राह्मण वर्ण को) दान लैने के अधिकारी पात्र समझने का भाव स्थिर रखना ।

(५) धर्मसृष्टि रक्षा—मिथ्यादृष्टियों द्वारा रची हुई मिथ्या धर्मसृष्टि का प्रभाव अपने पर न पड़ने दैना, किन्तु तीर्थंकरों द्वारा निर्मापित अनादि और सम्यक् धर्मसृष्टि को सदैव सुरक्षित रखना ।

(६) व्यवहारेशिता या प्रायश्चित स्वातंत्र—किसी मनुष्य में लगे हुए दोषों को दूर करने के लिये उसे शास्त्रानुसार यथायोग्य प्रायश्चित दैने का अधिकार रखना ।

(७) अवध्यत्व—उत्तम गुणों और सम्यक् धर्म का महत्त्व दूसरों के हृदय में बनाये रखने के लिये वर्णोत्तम ब्राह्मण से कभी कोई निकृष्ट से निकृष्ट अपराध (वध किये जाने योग्य पाप) बनजाने पर भी उसे राजा व प्रजा दोनों ही की दृष्टि में वध न किये जाने का अधिकार अपने लिये स्थिर रखना।

(८) अदंड्यत्व—अपने गुणाधिक्य से किसी साधारण अपराध पर दण्ड न पाने का अधिकार बनाये रखना।

(९) मानार्हता या मान्यत्व—अपने ज्ञान व चारित्र द्वारा सबही से आदर सत्कार पाते रहने योग्य अपने को बनाये रखना।

(१०) प्रजान्तर सम्बन्ध—अन्य मतावलम्बियों से सम्बन्ध रखने पर भी अपने पवित्र आचार विचार आदि से च्युत न होना, वरन् उन्हें भी अपने समान पवित्र आचरणी बनासकने योग्य अपने को बनाये रखना।

इस प्रकार भरत चक्रवर्ती द्वारा इस पवित्र ब्राह्मण वर्ण की स्थापना होने और उसका भले प्रकार सत्कार किये जाने पर भरतेश्वर की शेष सारी प्रजा भी उस वर्ण का दान सन्मान आदि से बहु सत्कार करने लगी। नित्य-पूजा करना

और कराना, दान लैना और दैना, शास्त्राध्ययन करना और कराना, ये मुख्य नित्य-षटकर्म इस वर्ण के माने गये। इनमें से जिन ब्राह्मणों का मुख्य कृत्य संस्कार-शुद्ध्यर्थ अपनी द्विज जाति की गर्भाधानादि क्रियायें तथा शास्त्राध्ययन कराना नियत होगया वे "गृहस्थाचार्य" कहलाने लगे, जिनमें से बहुत से अन्तमें प्रायः मुनिव्रत धारण करलेते थे।

नोट १—ज्ञानकांड व क्रियाकांड के ज्ञाता होकर जो उत्तम गृहस्थ अन्य गृहस्थों के यहां गृहस्थ धर्म सम्बन्धी क्रियाकांड कराने के अधिकारी होते हैं वे संसार-समुद्र से पार उतरने और दूसरों को उतारने के उद्योग में निरन्तर लगे रहते हैं ऐसे गृहस्थ धर्माचार्य "गृहस्थाचार्य" कहलाते हैं।

नोट२—"श्री आदिपुराण जी" के उपरोल्लिखित लेख से (देखो पर्व ३८, ३९, ४०) ब्राह्मण और द्विज, ये दौनों शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची या एकार्थी अथवा उच्चाचरणी प्रतिमाधारी पुरुषों के लिये प्रयुक्त किये गये प्रतीत होते हैं। इन्हें दियेगये इज्या वार्ता आदि षटकर्मोपदेश से यह भी जाना जाता है कि "वार्ता" अर्थात् आजीविका सम्बन्धी असि, मसि, कृषि और वाणिज्य, इन चार कर्मों में

से कोई एक कर्म गौणरूप से इस वर्ण के मनुष्य भी कर सकते थे । और ऐसा करते रहने पर भी वे क्षत्री या वणिक न कहलाकर ब्राह्मण या द्विज वर्णी ही माने जाते थे । अर्थात् जो मनुष्य पूजा, दान, स्वाध्याय, संयम और तप, इन ५ नित्य-कर्मों को मुख्यता से पालन करते हुए असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, इन चार में से कोई एक वार्ताकर्म भी गौणता से सन्तोष वृत्ति के साथ आजीविकार्थ करते थे और यथाशक्ति कोई प्रतिमा धारण करके उसके चिन्ह स्वरूप ब्रह्मसूत्र (जनेऊ) पहनने के अधिकारी होते थे, तथा जिनमें कुलपरिपाटी से शुभ संस्कारों व प्रशस्त क्रियाओं सहित सदाचार की प्रवृत्ति थी वे सब 'ब्राह्मण' या "द्विज" कहलाते थे । और इसके विरुद्ध जो बिना प्रतिमाधारी हुए पूजा, दानादि ५ नित्यकर्मों के बिना अथवा इन ५ को गौणरूप से करते हुए छह वार्ताकर्म सम्बन्धी असि, मसि, कृषि और वाणिज्य में से कोई एक कर्म आजीविकार्थ मुख्यरूप से करते थे वे यथा-कर्म क्षत्री या वणिक (वैश्य) वर्णी कहलाते थे, अर्थात् असि कर्म करने वाले क्षत्री, और मसि, कृषि, वाणिज्य करने वाले वणिक कहलाते थे । और जो वार्ता-कर्म सम्बन्धी शेष दो कर्म (नृत्यगानादि विद्याकर्म व हस्तकला आदि शिल्प-

कर्म) द्वारा अथवा इन कर्मों को करने की योग्यता न रखने के कारण सेवाकर्म से अपनी आजीविका करते थे वे जघन्यज, अवर या शूद्र कहलाते थे। (ये शूद्र अपनी क्रियाओं के अनुकूल कारु, अकारु भेद से दो प्रकार के और इनमें से प्रत्येक स्पर्श्य, अस्पर्श्य भेद से दो दो प्रकार के माने जाते थे। (देखो "श्री वृहत् जैनं शब्दार्णव" के पृ० १६ पर शब्द "अकारु" नोटों सहित)।

नोट ३—श्री आदि पुराण, पर्व १६ के श्लोक २४७ से पाया जाता है कि श्री ऋषभदेव की आज्ञानुसार शूद्र तो केवल शूद्र की ही पुत्री से विवाह कर सकता है, किन्तु वैश्य और क्षत्री, अपने वर्ण तथा अपने से नीचे वर्ण की पुत्री से भी विवाह करने के अधिकारी हैं और द्विज (ब्राह्मण) को यद्यपि वर्जित नहीं तो भी जहां तक बने अपने से नीचे वर्णकी पुत्री से विवाह न करना ही भला है।

नोट ४—श्री आदि पुराण के उपर्युक्त तीन पर्वों अर्थात् पर्व ३८, ३९, ४० को मनन पूर्वक ध्यान से पढ़ने पर उपरोल्लिखित बातों के अतिरिक्त यह भी जाना जाता है कि (१) यहां पर (इस प्रकरण में) वर्ण और जाति ये दोनों

आ॰ पु॰

शब्द परस्पर पर्यायवाची हैं अर्थात् एक ही अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं, यथा श्री आदि पुराण पर्व ३८ श्लोक ४५—

"मनुष्य जाति रेकैव, जातिनामोदयोद्भवा ।
वृत्ति भेदाहिताद्भेदाच्चातुर्विध्यमिहाश्नुते ॥"

अर्थात् "यद्यपि जाति नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुई मनुष्य जाति एकही है, तथापि जीविका के भेद से वह भिन्न भिन्न ४ प्रकार की होगई है ।" (२) शूद्र वर्ण के लोग मुनिदीक्षा ग्रहण करने के अधिकारी नहीं हैं । शेष तीन वर्णके लोग ही मुनि दीक्षा ले सकते हैं । अतः मुनि दीक्षा लेसकने न लेसकने की अपेक्षा वर्ण या जाति केवल दो ही हैं— वर और अवर अथवा उच्च और नीच । वर और अवर (उच्च व नीच) वर्ण या जाति का पारस्परिक विवाह सम्बन्ध होना वर्णसंकर या जातिसंकर दोष है । श्री त्रिलोकसार की गाथा ९२४ का आशय यही जान पड़ता है । उच्च वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्री, और वैश्य में परस्पर विवाह सम्बन्ध होना 'वर्णसंकर या 'जातिसंकर दोष नहीं है । क्योंकि

यदि यह दूषित होता तो उपरोल्लिखित नोट ३ के अनुसार "श्री ऋषभदेव भगवान्" इसकी आज्ञा न देते। और न "श्री धर्म्मसंग्रह श्रावकाचार" के कर्ता अधिकार ९ श्लोक २५६ में इन तीनों वर्णों के लिये परस्पर में विवाह सम्बन्ध कर लैने की आज्ञा देते ॥

(२१) भरतेश्वर के १६ स्वप्न और क्षत्रियों को क्षत्रिय धर्म का उपदेश

(आदि पुराण पर्व ४१, ४२)

कुछ काल तक राज्य लक्ष्मी का अनुपम उपभोग करचुकने पर एक रात्रि के अन्तिम पहर में भरत चक्री ने चित्त में कुछ उद्वेग और चिन्ता उत्पन्न करने वाले १६ स्वप्न देखे। उनका यथार्थ फल जानने के लिए वह अपने पूज्य पिता "श्री ऋषभदेव" भगवान के समवशरण में कैलास पर्वत पर पहुँचा। इसी अवसर पर गाढ़ भक्ति पूर्वक भगवान् के चरण कमलों की पूजा करते समय विशुद्ध परिणामों के फल स्वरूप उसे अवधिज्ञान प्राप्त हो गया। पश्चात् समवशरण के द्वादश कोष्ठों में से नरकोष्ठ में यथा स्थान बैठ कर पहिले धर्मोपदेश श्रवण किया। पश्चात्

ब्राह्मण वर्ण की स्थापना करने के गुण दोष और गत रात्रि में देखे १६ स्वप्नों का फल जानने की अभिलाषा प्रकट की जिन का उत्तर निम्नोक्त मिला :—

१. ब्राह्मण वर्ण की स्थापना यद्यपि इस समय यथा आवश्यक समयानुकूल की गई है जिस से धर्म मार्ग के चलने में यथेष्ट सहायता प्राप्त होगी, तथापि अब शीघ्र ही प्रारंभ होने वाले "दुःषम सुषम" नामक चतुर्थ काल के अन्तिम भाग में पहुँचकर इस वर्ण के मनुष्य अपनी उच्च जाति के अति अभिमान में भर जायेंगे और इन का बहु भाग जिह्वा लम्पटी व मांस लोलुपी बन कर संयम मार्ग से च्युत हो जाने के कारण स्वार्थ पोषक मार्ग को शनैः शनैः पुष्ट करता हुआ अन्त में सनातन जैन मार्ग का पूर्ण द्वेषी बन जायगा । ये लोग विद्या के मद में आकर जैन सूत्रों का अर्थ कुछ का कुछ लगा कर अपने कुविचारों की पुष्टि के लिए मन कल्पित ग्रन्थों की रचना कर डालेंगे ।

२. पहले स्वप्न में २३ सिंह वन में विचरते हुए पर्वत के शिखर पर चढ़ते देखना—इसका फल यह है कि प्रथम तीर्थंकर से २३ वें तक के तीर्थकाल में जिन लिंगी साधु कुनय पोषक न होकर अपने शुद्ध आचरणों में दृढ़ बने रहेंगे ।

३. दूसरे स्वप्न में एक सिंह के बच्चे के पीछे पीछे अनेक हरिण जाते देखना—इसका फल यह है कि अन्तिम तीर्थंकर के तीर्थकालमें (पंचम काल में) बहुत से जिन लिंगी साधु यथार्थ व्रतादिक पालने में असमर्थ होनेसे शिथिलाचारी हो जायेंगे। और बहुत से गृहस्थ उन्हीं के अनुगामी बन का शिथिलाचार का पोषण करेंगे।

४. तीसरे स्वप्न में हाथी के उठाने योग्य भारी बोझे से लदा हुआ घोड़ा देखना—इस का फल यह है कि पंचम काल में बहुतसे जैन साधु अपनी शक्ति से अधिक व्रतोपवासादि ग्रहण कर के उन्हें दूषित करेंगे और प्रतिज्ञाच्युत हो जायेंगे।

५. चौथे स्वप्न में बकरों के समूह को सूखे पत्ते चरते हुए देखना—इस का फल यह है कि पंचम काल में बहुत से मनुष्य सदाचार को त्याग कर दुराचारी बन जायँगे।

६. पांचवें स्वप्न में हाथी के कन्धे पर बन्दर चढ़ा हुआ देखना—इस का फल यह है कि पंचम काल में राज्य शासन प्राचीन क्षत्रियों के हाथों से निकल

कर प्रायः अकुलीनों के हस्तगत हो जायगा।

७. छटे स्वप्न में अनेक कौवों द्वारा स्वेत हंसो को कष्ट पाते देखना—इस का फल यह है कि बहुत से विधर्मी मनुष्य जैन साधुओं को कष्ट देंगे और भोले लोग दिगम्बर मुनियों को छोड़ कर धर्म की इच्छा से पाखण्डी साधुओं की सेवा करेंगे।

८. सातवें स्वप्न में भूतों को नाचते देखना—इस का फल यह है कि पंचमकाल में लोग प्रायः भूत प्रेतादि व्यन्तरों और भवनवासी देवों को अपना इष्ट देव मान कर उन की अधिक मानता करेंगे।

९. आठवें स्वप्न में चारों ओर जल से भरा और बीच में से सूखा हुआ सरोवर देखना—इसका फल यह है कि पंचम कालमें धर्म इस आर्य भूमि से नष्ट हो कर म्लेच्छ देशों में चला जायगा।

१०. नवें स्वप्न में धूलि से मलिन हुई रत्न राशि देखना—इस का फल यह है कि पंचाम काल में शुद्धाचारणी मुनि भी निर्मल शुक्लध्यानादि ऋद्धियों से विभूषित न हो सकेंगे।

११.दसवें स्वप्न में नैवेद्य खाता और बड़े सत्कार के साथ पूजा जाता हुआ स्वान (कुत्ता) देखना—इसका फल यह है कि बाह्य वेशी व अव्रती द्विजभी गुणी और व्रती पात्रों के समान आदर सत्कार पावेंगे।

१२. ग्यारहवें स्वप्न में शब्द करता हुआ घूमता तरुण बैल देखना—इसका यह फल है कि पंचमकाल में लोग प्रायः तरुणावस्था ही में मुनिपद धारण करेंगे, वृद्धावस्था में नहीं।

१३. बारहवें स्वप्न में स्वेत परिमंडल से घिरा हुआ चन्द्रमा देखना—इसका फल यह है कि पंचम कालमें मुनियों को अवधिज्ञान व मनःपर्यय ज्ञान न होगा।

१४. तेरहवें स्वप्न में दो बैल साथ साथ जाते देखना—इसका फल यह है कि पंचमकाल में मुनि एकाविहारी न होंगे अर्थात् इतने विशुद्ध परिणामी न होंगे जो अकेले विचरकर आत्मोन्नति करसकें।

१५. चौदहवें स्वप्न में बादलों से आच्छादित सूर्य देखना—इसका फल यह है कि पंचमकाल में जन्मे किसी मनुष्य को भी केवलज्ञान की प्राप्ति न होगी।

१६. पन्द्रहवें स्वप्न में छाया रहित सूखावृक्ष देखना—इसका फल यह है कि पंचमकाल में अधिकतर स्त्री पुरुष अपने सदाचार से भ्रष्ट हो जायँगे ।

१७. सोलहवें स्वप्न में सूखे जीर्ण पत्तोंका देखना—इसका फल यह है कि पंचमकालमें महा औषधियों का गुण नष्ट होजायगा ॥

इस प्रकार भरत श्री ऋषभ भगवान से ब्राह्मण वर्णोत्पत्ति के गुणदोष व १६ स्वप्नों का फल सुनकर और बहुत ही विनय पूर्वक भगवान को नमस्कार कर अपनी राजधानी में लौट आया । और पंचमकाल के लिये अनिष्ट सूचक अपने स्वप्नों की यथासम्भव शान्ति के लिये पूजन दानादि क्रियाओं द्वारा शान्ति कर्म किया ।

पश्चात् किसी एक दिन भरतेश्वर ने क्षत्रियों को क्षत्रियधर्म का उपदेश देते हुए उन्हें उनके निम्नोल्लिखित पांच मुख्यधर्म और उनके पालने की विधि आदि समझाकर उन्हें दृढ़ता से अपने धर्म पालन करने की शिक्षादी:—

(१) कुलाम्नायानुरक्षण—अपने कुलाम्नाय की रक्षा करना, अर्थात् अपने कुलके योग्य सदाचरणों की रक्षा करना ।

(२) मत्यनुपालन —अपनी बुद्धि का परिपालन, अर्थात् श्री अरहन्तदेव

निरूपित राजविद्या व धर्मशास्त्र आदि द्वारा इहलोक परलोक सम्बन्धी यथार्थज्ञान प्राप्त करके अपनी बुद्धि को निर्मल बनाये रखना ।

(३) आत्मरक्षण—विघ्न व दुर्गति से अपनी रक्षा, अर्थात् राज्यशत्रुओं द्वारा विष, शस्त्रादि से होने वाले उपद्रवों और धर्मशत्रुओं द्वारा मिथ्यात्वपोषण से होने वाले आक्रमणों से सदैव सावधान रहकर अपने शरीर और धर्मकी रक्षा करना तथा राज्य वैभव को अनेक आपत्तियों और बहुचिन्ताओं का मूल जानकर आत्मोन्नति में प्रयत्नशील रहना और इसे विनाशीक समझकर आयुपूर्ण होने से पहिले शीघ्र से शीघ्र त्यागकर मुनिव्रत धारण करलैना अथवा शरीरादि से मोह त्यागकर धर्मध्यान पूर्वक समाधिमरण से प्राण त्यागना ।

(४) प्रजानुपालन--बाह्याभ्यन्तर शत्रुओं से सुरक्षित रखकर प्रजा का पालन पोषण, अर्थात् जिस प्रकार बुद्धिमान ग्वाला अपनी गऊओं को सर्व प्रकार के उपद्रवों से बचाता हुआ और रोगादि कष्टों का शीघ्र से शीघ्र प्रतीकार करता हुआ तथा उपद्रवी पशु को उसके बल और शक्ति के अनुसार दयायुक्त योग्य दंड देकर उसका सुधार करता हुआ सर्वप्रकार से उनके पालन पोषण में सदा

प्रयत्नशील रहता है उसी प्रकार राजाओं को भी योग और क्षेम तथा लौकिक व धार्मिक और सामाजिक व पारमार्थिक शिक्षा और सर्व प्रकार से प्रजाका हित व सुधार करने वाले कोमल दंड आदि के साथ न्यायमार्ग पर चलकर दयालु हृदय से नीतिपूर्वक प्रजाका पालन पोषण करना ।

(५) समंजसत्व—औचित्य, अर्थात् चित्त की सावधानी पूर्वक निर्पक्षता के साथ दुष्टों का निग्रह व शिष्टों का पालन उचित रीतिसे करना, पुत्र मित्रादि का मोह, व शत्रु या धर्मद्रोही आदि पर द्वेश आदि मनमें न रखकर प्रत्येक के साथ उसके आचरणों व योग्यता के अनुकूल यथायोग्य बर्ताव करना, अयोग्य को तिरस्कारादि से योग्य बनाने और सुयोग्य को पुरस्कारादि से सन्तुष्ट कर अधिकाधिक योग्यता प्राप्त करने के लिये उत्कंठित करना । इत्यादि

(२२) महाराज जयकुमार और महारानी सुलोचना

(आदि पुराण पर्व ४३, ४४, ४५)

पूर्वोक्त अध्याय (१२) में पृ० ७६ पर बताया जा चुका है कि भगवान ऋषभदेव ने अपने राज्याभिषेक के पश्चात् अपने वंश के अतिरिक्त अन्य चार मूल

वंशों की स्थापना की जिन में से एक "**कुरुवंश**" था। जिसका मूलनायक महा भाग्यशाली "**सोमप्रभ**" था इस के लघु भ्राता का नाम 'श्रेयांस' था जिस ने जातिस्मरण हो जाने पर एक वर्ष के निराहार उपवासे श्री ऋषभदेव भगवान को सब से पहिले इक्षुरसाहार बड़ी भक्ति पूर्वक निरन्तराय देकर दानियों में अग्रेश्वर बनने का सौभाग्य प्राप्त किया था। इस सोमप्रभ की राजधानी कुरुजांगल-देश के मध्य "**हस्तिनापुरी**" थी। इसी सोमप्रभ की रानी "लक्ष्मीवती" के गर्भ से युवराज **जयकुमार** का जन्म हुआ जिसने श्री ऋषभ भगवान के समीप अपने पिता और पितृव्य के मुनिदीक्षा ग्रहण कर लैने पर राज्य सिंहासन पाया। विजयकुमार आदि १४ इसके लघु भ्राता और थे। इस ही महाराजा "जयकुमार" ने दिग्विजय के समय नागमुख और मेघमुख को अपने बाणों द्वारा पराजित कर भरत चक्रवर्ती से 'मेघेश्वर' का उपनाम पाया और उस का सन्मान पात्र बन कर मुख्य शूर वीर के पद पर नियुक्त हुआ था (पृ० ११४, ११९) ॥

वंशों की स्थापना की जिन में से एक "**कुरुवंश**" था। जिसका मूलनायक महा भाग्यशाली "**सोमप्रभ**" था इस के लघु भ्राता का नाम 'श्रेयांस' था जिस ने जातिस्मरण हो जाने पर एक वर्ष के निराहार उपवासे श्री ऋषभदेव भगवान को सब से पहिले इक्षुरसाहार बड़ी भक्ति पूर्वक निरन्तराय देकर दानियों में अग्रेश्वर बनने का सौभाग्य प्राप्त किया था। इस सोमप्रभ की राजधानी कुरुजांगल-देश के मध्य "**हस्तिनापुरी**" थी। इसी सोमप्रभ की रानी "लक्ष्मीवती" के गर्भ से युवराज **जयकुमार** का जन्म हुआ जिसने श्री ऋषभ भगवान के समीप अपने पिता और पितृव्य के मुनिदीक्षा ग्रहण कर लेने पर राज्य सिंहासन पाया। विजयकुमार आदि १४ इसके लघु भ्राता और थे। इस ही महाराजा "जयकुमार" ने दिग्विजय के समय नागमुख और मेघमुख को अपने बाणों द्वारा पराजित कर भरत चक्रवर्ती से "मेघेश्वर" का उपनाम पाया और उस का सन्मान पात्र बन कर मुख्य शूर वीर के पद पर नियुक्त हुआ था (पृ० ११४, ११९)॥

प्रयत्नशील रहता है उसी प्रकार राजाओं को भी योग और क्षेम तथा लौकिक व धार्मिक और सामाजिक व पारमार्थिक शिक्षा और सर्व प्रकार से प्रजाका हित व सुधार करने वाले कोमल दंड आदि के साथ न्यायमार्ग पर चलकर दयालु हृदय से नीतिपूर्वक प्रजाका पालन पोषण करना ।

(५) समंजसत्व—औचित्य, अर्थात् चित्त की सावधानी पूर्वक निर्पक्षता के साथ दुष्टों का निग्रह व शिष्टों का पालन उचित रीतिसे करना, पुत्र मित्रादि का मोह, व शत्रु या धर्मद्रोही आदि पर द्वेश आदि मनमें न रखकर प्रत्येक के साथ उसके आचरणों व योग्यता के अनुकूल यथायोग्य बर्ताव करना, अयोग्य को तिरस्कारादि से योग्य बनाने और सुयोग्य को पुरस्कारादि से सन्तुष्ट कर अधिकाधिक योग्यता प्राप्त करने के लिये उत्कंठित करना । इत्यादि

(२२) महाराज जयकुमार और महारानी सुलोचना

(आदि पुराण पर्व ४३, ४४, ४५)

पूर्वोक्त अध्याय (१२) में पृ० ७६ पर बताया जा चुका है कि भगवान ऋषभदेव ने अपने राज्याभिषेक के पश्चात् अपने वंश के अतिरिक्त अन्य चार मूल

अकम्पन ने यथा योग्य सबही का भले प्रकार सन्मान किया। देवपूजन के पश्चात् नियत समय पर "महेन्द्रदत्त" नामक कंचुकी (राजाओं के अन्तःपुर अर्थात् रणवास का अधिकारी) के साथ "विचित्रांगद देवके दिए हुए सुसज्जित रथ पर चढ़ कर राजकुमारी "सुलोचना" स्वयम्वर मंडप में आई। सर्व राजकुमारों के वंश वैभव व गुण आदि से परिचित कंचुकी के मुख से उनका परिचय पाकर राजकुमारी सुलोचना ने वरमाला कुरुवंश दीपक "जयकुमार" के कंठ में डाली इस स्वयंवर मंडप में भरत चक्रवर्ती का ज्येष्ठ पुत्र "अर्ककीर्ति" भी उपस्थित था अपने "दुर्मर्षण" नामक एक सेवक के अनीति और अन्याय पूर्ण वचनों से उत्तेजित हो कर और सारे भरत खंड के अधिपति चक्रवर्ती भरत का पुत्र होने के अभिमान में आकर 'अर्ककीर्ति' अनेक अन्य राजकुमारों को भी अपना साथी बना कर "जयकुमार" से युद्ध करने के लिए उद्यत हो गया। न्याय और नीतिमार्ग को भले प्रकार जानने समझने वाले अपने मन्त्री "अनवद्यमति" के तथा महाराज अकम्पन व जयकुमार के अति विनयपूर्ण और न्याययुक्त कोमल वचनों पर भी जब उसका अन्याय पूर्ण क्रोध शान्त न

पूर्वोक्त अ० १२ ही में पृ० ७७ पर यह भी निरूपण हो चुका है कि "नाथवंश" का मूलनायक महा भाग्यशाली राजा "अकम्पन" बनाया गया। यह काशीदेश का अधिपति बना। इस की राजधानी वाराणसी नगरी (बनारस शहर) थी। महाराज भरतेश्वर जिस प्रकार मोक्ष मार्ग में श्री ऋषभ भगवान को परम पूज्य मानते थे उसी प्रकार वे गृहस्थाश्रम में महाराजा अकम्पन को पूज्य दृष्टि से देखते थे इस ही महाराजा अकम्पन की महारानी "सुप्रभा" के उदर से हेमांगद, सुकेतु और श्री सुकान्त आदि एक सहस्र पुत्रों और सुलोचना व "लक्ष्मीमती" नाम की दो पुत्रियों ने जन्म लिया।

एक दिन अपनी पुत्री सुलोचना को विवाह योग्य युवावस्था को प्राप्त हुई देख कर महाराजा अकम्पन ने श्रुतार्थ सिद्धार्थ सर्वार्थ और सुमति, इन अपने चारों मन्त्रियों की सम्मतिपूर्वक उसका स्वयम्वर-विधिसे विवाह करना निश्चित किया। महाराजा अकम्पन के भ्राताके जीव विचित्रांगद नामक देव द्वारा यथाविधि स्वयंवर-मंडप रचा गया जिसमें देश देशके राजकुमार आ आकर उपस्थित हुए। महाराजा

के अनुचित कार्य की निन्दा और अकम्पन व जयकुमार के कार्यों की बहुत ही प्रशंसा की। जयकुमार कुछ दिन श्वशुर के यहां वाराणसी नगरी में रहने के पश्चात् वहां से विदा हो कर और अयोध्या में भरतेश्वर चक्रवर्ती से मिलता हुआ अपनी राजधानी हस्तिनापुरी में आगया ॥

कुछ दिन पश्चात् काशी नरेश महाराज अकम्पन राज्य लक्ष्मी से सन्तुष्ट हो विषय भोगों से विरक्त होगये। पंचपरमेष्ठी का पूजनकर ज्येष्ठ पुत्र हेमाङ्गद को राजगद्दी दी। कई अन्य राजाओं व महारानी सुप्रभा सहित "श्री ऋषभ देव" भगवान के समीप जाकर दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण करली और महान तपोबल से ज्ञानावरणादि चारों घातिया कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

(२३) जयकुमार और सुलोचना का जाति-स्मरण और दीक्षा ग्रहण

(आदि पुराण पर्व ४६, और ४७ श्लोक १ से २८८ तक)

पूर्वोपार्जित पुण्य कर्मके उदयसे प्राप्त राज्य विभूति और सुखसम्पत्ति का आस्वा-

हुआ तो विवश होकर "जयकुमार" को भी इस अन्यायान्वित युद्धके लिए सुकेतु, सूर्यमित्र, श्रीधर, जयवर्मा, देवकीर्ति आदि अनेक न्याय पक्ष का साथ देने वाले वीर राजाओं को अपने पक्ष में ले कर तईयार होना पड़ा। उभय पक्ष में घमसान युद्ध हुआ और अन्त में न्याय पक्ष की विजय और अन्याय की पराजय हुई अर्थात् अपने एक मित्र "नागदेव" के दिए हुए दिव्य नागपाश और अर्द्धचन्द्र वाण की सहायता से "जयकुमार" ने अर्ककीर्ति को वांध लिया। पश्चात् बड़ी नम्र प्रार्थना पूर्वक "अकम्पन" ने अपनी लघु पुत्री अक्षमाला "अर्ककीर्ति" को परिणा कर और "जयकुमार" के साथ मेल मिलाप कराकर उसे प्रसन्न कर लिया। अपने द्वार पर आए हुए दोनों पक्ष के राजे महाराजों और राजकुमारों को सर्व प्रकार से सन्तुष्ट कर के यथायोग्य बहुत ही आदर सत्कार के साथ विदा किया। पश्चात् बड़े महोत्सव के साथ शुभ लग्न में सती सुलोचना का पाणिग्रहण जयकुमार के साथ यथाविधि किया गया। चक्रवर्ती भरतेश्वर ने जब जयकुमार की सम्मति पूर्वक अकम्पन के भेजे हुए सुमुख नामक दूत द्वारा यह सब समाचार सुने तो अपने पुत्र अर्ककीर्ति को अपनी अपकीर्ति का कारण मान कर उस

करने के अभिप्राय से सुलोचना को, माने हुए पूर्वभवों का सारा वृतान्त सुनाने की आज्ञा दी। सुलोचना ने विस्तार पूर्वक अपने कई पूर्व जन्मों की सारी कथा कह सुनाई जिसका सारांश निम्न प्रकार है:—

(१) अब से चार जन्म पूर्व जब सुलोचना "मृणालवती" नगर के एक सेठ "श्रीदत्त" की **रतिवेगा** नाम की पुत्री थी तो वह उसी नगर के एक अन्य सेठ अशोकदेव के पुत्र "**सुकान्त**" को विवाही गई।

(२) उसी मृणालवती नगर के राजश्रेष्ठी सुकेत के भवदेव नामक पुत्र द्वारा जब रतिवेगा और सुकान्त दोनों स्त्री पुरुष अग्नि में डालकर मार डाले गये तो वे मरकर पुण्डरीकिणी पुरी के सेठ "कुवेरकान्त" के महल में **रतिषेणा** और "**रतिवर**" नाम के युगल कबूतरी कबूतर हुए। यहाँ दो जंघाचारण ऋद्धि-धारी मुनियों के दर्शन मात्रसे इस युगलको जातिस्मरण हो आया और परिणामों की कुछ विशुद्धी से पुण्य बन्ध किया।

(३) यह कबतर कबूतरी का युगल किसी दिन एक बिलाव द्वारा (जो

दस और धर्म पूर्वक अर्थ और काम का यथार्थ रीति के साथ पूर्णरूप से उपभोग
करते हुए जब जयकुमार और सुलोचना का समय आनन्द में व्यतीत हो रहा था
तो एक दिन राजभवन के किसी ऊपरी भाग पर बैठे हुए किसी विद्याधर और
विद्याधरी के युगल को विमान में बैठे आकाश मार्ग से जाते देख कर "जय-
कुमार" को अकस्मात् जातिस्मरण होगया अर्थात् अपने पूर्व भव का स्मरण हो
आया। और "हा प्रभावती, हा मेरी प्राणवल्लभा प्रभावती" कहता हुआ वह एक
दम मूर्छित होगया। इसी प्रकार "सुलोचना" भी उसी स्थान में एक कबूतर
कबूतरी के युगल को देखकर जातिस्मरण होजाने से "हा रतिवर, हा मेरा प्राण-
प्यारा रतिवर" कहती हुई मूर्छित होगई। अब दास दासियों द्वारा शीतोपचार
किये जाने पर दोनों सचेत हुए तो दोनों अपने कई जन्मों से स्त्री पुरुष होते आने
का सर्व सम्बन्ध जानकर एक दूसरे को और भी अधिक प्रेम की दृष्टि से देखने
लगे। जिससे जयकुमार की अन्य स्त्रियों के मन में ईर्षाभाव अधिक बढ़ गया।
उन्हों ने सुलोचना के मूर्छित होने को एक छलयुक्त त्रिया-चरित्र समझा। जय-
कुमार ने इस भाव को ताड़कर सर्व उपस्थित स्त्री पुरुषों के मन की संशय दूर

"शिवंकरा" नाम की महारानी के "अनन्तवीर्य" नामक पुत्र को राज्यदेकर विजय, जयन्त, और संजयन्त आदि अपने लघु भ्राताओं सहित "श्री ऋषभदेव" भगवान के सन्मुख जिनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करली।

जयकुमार के साथ रविकीर्ति, रविजय, अरिन्दम, अरिंजय, सुजय, सुकान्त, अजितंजय, महाजय, अतिवीर्य, वरंजय, रविवीर्य, आदि कितने ही भरतराज के पुत्रों ने भी दीक्षा लेली।

जयकुमार ने दीक्षा लेने के पश्चात् पूर्ण श्रुतज्ञान का अध्ययन करते हुए उत्कृष्ट संयम के बल से शीघ्र ही सप्त ऋद्धियाँ प्राप्त करलीं और फिर उसके आत्मा में मनःपर्ययज्ञान की निर्मल ज्योति भी प्रकट होजाने पर वह "श्री ऋषभदेव" भगवान् का ७१ वां गणधर हुआ।

महाराजा जयकुमार के दीक्षित होजाने के पश्चात् महारानी "सुलोचना" ने भी श्रीमती ब्राह्मी आर्यिका के पास जाकर आर्यिका के व्रत ग्रहण कर लिये और तपोबल से स्त्रीलिंग छेदकर आयु के अन्त में समाधिमरण से प्राणत्याग कर १६ वें

पूर्वभव के शत्रु भवदेव का जीव था) मार डाला गया । मुनिदर्शन के समय बँधे हुए पुण्यकर्म के फल स्वरूप यह युगल प्राणान्त होकर **"हिरण्यवर्मा"** और **प्रभावती** नाम के विद्याधर विद्याधरी (दम्पति) हुए। इस जन्म में इन दोनों ने विषय भोगों से विरक्त होकर मुनि और आर्यिका के व्रत ग्रहण किये।

(४) हिरण्यवर्मा और प्रभावती समाधिमरण पूर्वक शरीर परित्याग करके **कनकप्रभ** और **कनकप्रभा** नाम के कल्पवासी देव और देवी हुए।

(५) स्वर्ग की आयु पूर्ण कर कनकप्रभ का जीव हस्तिनापुर नरेश "सोमप्रभ" का पुत्र **जयकुमार** हुआ और उसकी देवी कनकप्रभा का जीव वाराणसी नगराधीश "अकम्पन" की पुत्री **सुलोचना** हुई।

इस प्रकार अपने पूर्व पुण्यकर्म के उदयजन्य सर्व प्रकार के भोगोपभोग भोगते दीर्घ काल बीत जाने पर एक दिन "जयकुमार" ने "श्री ऋषभदेव भगवान" के समवशरण में जाकर धर्मोपदेश सुना। भोगविलासों से विरक्त होकर और अपनी

(२१) अचल (२२) मेरु (२३) मेरुधन (२४) मेरुभूति (२५) सर्वयश (२६) सर्वयज्ञ (२७) सर्वगुप्त (२८) सर्वप्रिय (२९) सर्वदेव (३०) सर्वविजय (३१) विजयगुप्त (३२) विजयमित्र (३३) विजयिल (३४) अपराजित (३५) वसुमित्र (३६) विश्वसेन (३७) साधुसेन (३८) सत्यदेव (३९) देवसत्य (४०) सत्यगुप्त (४१) सत्यमित्र (४२) निर्मल (४३) विनीत (४४) संवर (४५) मुनिगुप्त (४६) मुनिदत्त (४७) मुनियज्ञ (४८) मुनिदेव (४९) गुप्तयज्ञ (५०) मित्रयज्ञ (५१) स्वयंभू (५२) भगदेव (५३) भगदत्त (५४) भगफल्गु (५५) गुप्तफल्गु (५६) मित्रफल्गु (५७) प्रजापति (५८) सर्वसंग (५९) वरुण (६०) धनपालक (६१) मघवान् (६२) तेजोराशि (६३) महावीर (६४) महारथ (६५) विशालाक्ष (६६) महाबाल (६७) शुचिशाल (६८) वज्र (६९) वज्रसार (७०) चन्द्रचूल (७१) जय (७२) महारस (७३) कच्छ (७४) महाकच्छ (७५) नमि (७६) विनमि (७७) बल (७८) अतिबल (७९) भद्रबल (८०) नंदी (८१) महाभागी (८२) नंदीमित्र (८३) कामदेव (८४) अनुपम।

स्वर्ग के अनुत्तर नामक विमान में उसने एक ऋद्धिधारी देवकी पर्याय पाई। १६ वें स्वर्ग की लगभग २२ सागरोपम काल की आयु पूर्ण करके और मनुष्य जन्म लेकर सुलोचना का जीव मोक्षपद प्राप्त करेगा।

(२४) श्री ऋषभदेव भगवान् के समवसरण में मुनि आदि का संघ, भगवान् का धर्मोपदेश और निर्वाण गमन

(आदि पु० पर्व ४७ । २९०–३५४)

१. समवसरण में मुनि आदिका संघ

१. श्री ऋषभदेव भगवान के ८४ गणधर निम्नोक्त थेः—

(१) श्री ऋषभसेन, (२) कुम्भ (३) दृढ़रथ (४) शतधनु (५) देवशर्म्मा (६) भावदेव (७) नन्दन (८) सोमदत्त (९) सूरदत्त (१०) वायुशर्म्मा (११) यशोबाहु (१२) देवाग्नि (१३) अग्निदेव (१४) अग्निगुप्त (१५) मित्राग्नि (१६) हलभृत (१७) महीधर (१८) महेन्द्र (१९) वसुदेव (२०) वसुन्धरा

इन्द्रादि देवों द्वारा रचित और अनेक विभूति सहित व अनुपम शोभा संयुक्त समवसरण के मध्य में रत्नमय उच्च सिंहासन पर चार अंगुल ऊँचे अधर विराजमान " आदि ब्रह्मा श्री ऋषभ भगवान् " की प्रातः, मध्यान्ह, सायंकाल और अर्द्ध रात्रि में छह छह घड़ी चार बार नित्य प्रति खिरने वाली अनक्षरी दिव्य वाणी आनन्दामृत बरसाती हुई पूर्वोक्त द्वादश कोष्ठों में बैठे हुए सर्व ही भव्य सभाजनों के हृदय को आनन्दित करती थी। भगवान की दिव्य वाणी उनकी इच्छा बिना ही अनेक भव्य प्राणियों के केवल पुण्योदयवश भगवान् के परमौदारिक निगोदराशि रहित निर्मल शरीर के द्वारा प्रकट होकर और विशेष जाति के देवों द्वारा अर्द्धमागधी भाषा में परिणवकर सर्व उपस्थित भव्यजनों के कर्णगोचर होती थी जो उनके मन में उठे हुए प्रश्नों या शंकाओं का सामान्य रूप से समाधान करदेती थी। और जिसका आशय चार ज्ञान धारी श्री गणधरदेव पूर्ण रूप से समझकर विस्ताररूप से सर्व को समझा देते थे। भगवान् की अनक्षरी दिव्य वाणी को श्री वृषभसेन गणधर देव ने अपने पवित्र, स्वच्छ और दिव्य ज्ञान-बल से द्वादश अङ्गों और चतुर्दश प्रकीर्णकों में विभाजित करके अक्षर बद्ध * कर

* यह द्वादशांग वाणी अक्षरबद्ध हो जाने पर भी सम्पूर्ण रूप से लिपि बद्ध

२. श्री ऋषभदेव के समवसरण में ८४ गणधरों के अतिरिक्त अन्य मुनियों की संख्या निम्नोल्लिखित थी:—

(१) केवलज्ञानी २० सहस्र, (२) मनः पर्ययज्ञानी १२७५०, (३) अवधिज्ञानी ९०००, (४) द्वादशाङ्ग (अङ्ग प्रविष्ट) और चतुर्दश प्रकीर्णक (अङ्ग बाह्य) के पाठी श्रुत केवली ४७५०, (५) वैक्रियक ऋद्धि धारक २०६००, (६) वाद ऋद्धि धारी १२७५०, (७) सूत्राभ्यासी शिक्षक मुनि ४१५०, इस प्रकार ये सब ८४००० मुनि थे। इनमें से २० सहस्र ने तो समवसरण ही में केवल ज्ञान प्राप्त करके और ४०९०० ने अन्यान्य स्थानों में केवलज्ञान पाकर निर्वाण पद प्राप्त किया। २० सहस्र ने पंच अनुत्तर या नव अनुदिश विमानों में से किसी न किसी में, और शेष ३१०० ने नव ग्रैवेयक या सोलह स्वर्गों में से किसी न किसी में जन्म पाया।

३. श्री ऋषभ देव के समवसरण में (१) आर्यिका ब्राह्मी आदि ३५०,००० थीं, (२) व्रती श्रावक दृढ़व्रत आदि ३००,००० थे, (३) व्रती श्राविकाएं सुव्रता आदि ५००,००० थीं।

२. श्री ऋषभ देव भगवान की दिव्य वाणी और उनका धर्मोपदेश

संख्यात महा योजन प्रमाण) तीन लोक का व अपरिमित अलोकाकाश का निरूपण—अधोलोक के सप्त नरकों आदि का, मध्यलोक के सर्व द्वीप समुद्र पर्वत नदी आदि का, ज्योतिष चक्र व उसके भ्रमणाभ्रमण आदि का, उत्सर्पिणीयावसर्पिणीय काल परिवर्तन अपरिवर्तन आदि का, ८४ लक्ष जाति (योनि) व १९७॥ करोड़ कुल के मनुष्यादि प्राणियों और उन पर क्षेत्र कालादि के व ज्योतिष चक्र के प्रभाव का, १६९ पुण्य पुरुषों व ६३ शलाका पुरुषों आदि की उत्पत्ति, आयु, काय, चरित्र का, व १४ गुणस्थानों, १४ मार्गणाओं, २० प्ररूपणाओं, और ९८ जीव समासों आदि द्वारा सर्व प्रकार के षट्कायिक प्राणियों के आचार विचार, तपध्यान, क्रिया, शक्ति बल समर्थ ऋद्धि और उनकी गत्यागति आदि का, और ऊर्द्ध लोक के १६ स्वर्गों, ९ ग्रैवेयकों, ९ अनुदिशों, व ५ अनुत्तर विमानों के सर्व ६३ पटलों का, व ईषत्प्रभार (ईषत्प्राग्भार) नामक अष्टमधरा (अष्टमभूमि),स्फटिकमणिमय स्वेत सिद्धशिला (मुक्तिशिला, सिद्धक्षेत्र, सिद्धभूमि) और सिद्धालय * आदि का विशद् वर्णन भगवान् की दिव्यबाणी में हुआ ॥

---

*"सिद्धालय" लोकशिखर पर अर्थात् त्रिलोक रचना के सब से ऊपर के भाग

दिया जिससे अनेकानेक भव्य प्राणी केवली भगवान की अनुपस्थिति में भी सदैव लाभ उठाते रहते और आत्मकल्याण करते हैं। भगवान् ऋषभदेव की उस दिव्यवाणी व मुख्य गणधर रचित द्वादशांग और चतुर्दश प्रकीर्णक द्वारा मोक्ष-मार्ग की प्रवृत्ति के लिये सर्व जीवों के कल्याणार्थ जो वस्तुस्वरूप व धर्म के लक्षण आदि का निरूपण हुआ उसका कुछ सारांश केवल संकेतरूप निम्न प्रकार है:—

(१) विश्वरचना —विश्वरचना में ३४३ घनराजू प्रमाण (असंख्याता-

कभी आज तक नहीं हुई। केवल कुछ अंश रूप यथा आवश्यक अवश्य लिपिबद्ध भी समय समय पर होती रही है; तथा महान् आचार्यों व बड़े बड़े ऋषि मुनियों आदि द्वारा मौखिक रूप से मुख्यतयः इससे लाभ उठाया जाता रहा है। यह द्वादशांग वाणी अपनी अधिकता के कारण पूर्ण रूप से लिखी जानी तो दूर रही, कभी मौखिक रूप से भी सम्पूर्ण नहीं निरूपण की गई। केवल तपोबल से श्रुतज्ञानावरणीय कर्म के उत्कृष्ट क्षयोपशम होने पर ऋद्धिधारी मुनि ही इसे पूर्णतः प्राप्त करते रहे हैं जिसके प्राप्त होजाने पर वे "श्रुतकेवली" कहलाने लगते हैं॥

त्याग का, पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत और अन्त सल्लेखनामरण का, १४ लक्षण, १७ नियम, २२ अभक्ष्यत्याग का, गर्भाधान आदि २६ संस्कारों और ५३ क्रियाओं का, सप्त मौन, चार प्रकार के ४४ भोजनान्तराय और ११ स्थान चन्दोये लगाने का, ६३ गुणयुक्त और ५० दोष वर्जित निर्मल सम्यक् दर्शन व दर्शनादि ११ प्रतिमाओं का, इत्यादि; और मुनिधर्म सम्बन्धी २८ मूलगुणों व ८४ लाख उत्तरगुणों का, द्वादशानुप्रेक्षा चिन्तवन व द्वाविंशति परीषहजय का, रत्नत्रय व दशलक्षण धर्म और षोडशकारण भावनाओं का, १८ सहस्र भेदयुक्त मैथुन व ३७॥ सहस्र भेदयुक्त प्रमाद त्याग और १८ सहस्र शीलांग धारण करने का, धर्मध्यान व शुक्लध्यान और उनके भेद उपभेदादि का, यती, मुनि, ऋषि, साधु आदि मुनि भेदों व उपभेदों और उनके लक्षणादि का, इत्यादि इत्यादि का सविस्तार निरूपण हुआ।

(४) विद्या, कला, मंत्र, यंत्र, पूजा विधानादि —विद्या के मूल भेद दो व उत्तर भेद १४ या ६४ या अनेक, तथा अष्ट गन्धर्व विद्या, अष्ट दैत्यविद्या, १६ रोहिणी आदि दिव्य विद्या, ५०० रोहिणी आदि महा विद्या, ७०० लघु विद्या,

(२) षट द्रव्य आदि —तीनलोकपूर्ण षटद्रव्यों का, सप्ततत्व, नवपदार्थ, पंचास्तिकाय और नय प्रमाण आदि के भेद विभेद और उन सब के गुण, पर्याय, लक्षण, स्वरूप आदि का सर्वाङ्गपूर्ण भिन्न २ निरूपण किया गया ।

(३) धर्म और धार्मिक क्रिया आदि—गृहस्थधर्म व मुनिधर्म का—गृहस्थधर्म सम्बन्धी षट कर्मोंका, अष्ट मूलगुणों और २१ उत्तर गुणोंका, सप्त व्यसन-

---

में ४५ लाख महा योजन के व्यास का केवल ५२५ धनुष (२१०० हाथ) मोटा (ऊँचाई में) गोलाकार अढ़ाई द्वीप की बराबर है जो त्रिकाल में सिद्धपद प्राप्त करने वाले अनन्तानन्त जीवों का निवास स्थान है ।

इस सिद्धालय से नीचे पौन महा योजन और १५७२ $\frac{१६}{२०}$ महाधनुष (१८९३ $\frac{३६}{८०}$ कोस या १८९३ कोश और ९७५ धनुष) का अन्तराल छोड़ कर ४५ लाख महायोजन व्यास की गोल उलटे छाते के आकार मध्य में ८ महायोजन मोटी "सिद्धशिला" है। इसी स्थान में पूर्व पश्चिम ७ राजू लम्बी, उत्तर दक्षिण १ राजू चौड़ी और सर्वत्र ८ राजू मोटी चौकोर "ईषत्प्राग्भार" नामक अष्टमधरा है (अष्टमधरा, सिद्धशिला और सिद्धालय का विशेष वर्णन जानने के लिए देखो "श्री वृहत् जैनशब्दार्णव" के पृ० १५३, १५४) ॥

को शुभ मिति फाल्गुन कृ० ११ से निर्वाणतिथि माघ कृ० १४ के १४ दिन पूर्व मिती पौष शु० पौर्णमा तक ४१ दिन युक्त १००० वर्ष कम एक लक्ष पूर्व्व काल पर्यन्त नित्य प्रति धार धार बार खिरती रही। पश्चात् जब समवशरण रचना सब विघट गई और वाणी का खिरना रुक गया तब कैलास पर्वत के श्री शिखर और सिद्ध शिखर नाम के दो शिखरों अर्थात् चोटियों के मध्य भगवान ऋषभ पद्मासन से विराजे हुए योग निरोध के सन्मुख हुए।

नोट—उपरोक्त धर्मोपदेश सम्बन्धी विशेष विवरण इसी "संक्षिप्तपुराण" के लेखक रचित "श्री वृहत्जैन शब्दार्णव" नामक ग्रन्थ के पृ० २, ४. १३, २१, ४४-४६, ५१-५४, ५५, ७२, ७६-८५, ११६-१२८, १३७-१३६, १४७-१५१, १५२-१५८, १७०-१८१, १६२-२०३, २२२-२२७, २३३-२४१, २४२, २४३, २४५, २४६-२४६, २५५-२६६, २६४-२७६, इत्यादि देखें॥

जिस दिन भगवान योगनिरोध के सन्मुख हुए उसकी पूर्वरात्रि के अन्तिम पहर के अन्तिमभाग में महाराज भरत ने स्वप्न देखा कि "मेरुगिरि उतंग होकर सिद्ध क्षेत्र तक पहुँच गया है" और युवराज अर्ककीर्ति ने यह स्वप्न देखा कि "स्वर्ग

७२ कला, और अनेक प्रकार के यंत्र मंत्र पूजा विधान, वैद्यक, गणित, ज्योतिष, सामुद्रिक, शकुनावली, आदि का पूर्ण विवरण के साथ कथन किया गया। इत्यादि इत्यादि ।

इस प्रकार श्री ऋषभदेव भगवान् की अनक्षरी दिव्यध्वनि में सर्व विषयों का सर्वांग पूर्ण विशद निरूपण संक्षिप्त रूप से दिक्‌दर्शन मात्र हुआ, जिसे **श्री वृषभ-सेन** मुख्य गणधर देव ने अपने अवधिज्ञान व मनःपर्ययज्ञान व पूर्ण श्रुतज्ञान के दिव्य बल से भले प्रकार समझ कर पूर्ण विस्तार के साथ एक कम एकट्ठी प्रमाण अपुनरुक्त और इस संख्या से कई गुणी पुनरुक्त अक्षरोंयुक्त द्वादशांगों व चतुर्दश प्रकीर्णकों में बड़ी उत्तम रीति से विभाजित करके अक्षरबद्ध कर दिया जिसे वे भगवान की चार बार छह छह घड़ी होने वाली दिव्यध्वनि के अन्तराल काल में तथा भगवान के निर्वाण गमन के पश्चात् भी आवश्यक्तानुसार यथा समय उपस्थित सर्व सभाजनों को सुनाते रहे ॥

इस प्रकार भगवान ऋषभदेव की निरक्षरी दिव्यवाणी केवलज्ञान प्राप्त होने

तईयारी सूचक स्वप्न देखे। प्रातःकाल उठकर और आवश्यकीय नित्य क्रियाओं से निवृत होकर राजपुरोहित के साथ साथ रात्रि के देखे हुए इन स्वप्नों पर विचार हो ही रहा था कि इतने ही में **आनन्द** नाम के एक मनुष्य ने राजसभा में आकर **श्री ऋषभदेव भगवान** के योगनिरोध की सूचना दी। यह सूचना पाते ही महाराज भरत अपने मुख्य मुख्य सभा जनों आदि को साथ लेकर **कैलास** पर्वत पर पहुँचे और भगवान की तीन प्रदक्षिणाएँ दीं, स्तुति की, पूर्ण भक्ति के साथ **महामह** नाम की महापूजा की और इसी प्रकार १४ दिन तक पूजा बन्दना स्तवन आदि करते रहे। चौदहवें दिन **माघ कृ० १४** के सूर्योदय के शुभमुहूर्त और **अभिजित्** नक्षत्र (उत्तराषाढ़ नक्षत्र का अन्तिम भाग) में पूर्वमुख **पर्यंकासन** (पद्मासन) लगाए हुए भगवान ऋषभ ने "सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति" नाम के शुक्ल ध्यान के तृतीय पाए से मन वचन काय इन तीनों योगों का पूर्ण निरोध कर के "**अयोग केवलि**" नाम का १४वां गुणस्थान प्राप्त करलिया। जितनी देर में अ इ उ ऋ लृ इन पांच लघु स्वरों का साधरणतः उच्चारण होता है उतने समय

से आया हुआ एक महौषधिवृक्ष मनुष्यों के जन्म भर के रोगों को नष्ट करके फिर स्वर्ग ही को जारहा है।" **गृहपति** ने स्वप्नमें देखा कि "एक कल्पद्रुम जो लोगों की आकांक्षाओं को पूर्ण करता था वह अब स्वर्गलोक को जाने के सन्मुख है।" **मुख्य मंत्री** ने देखा कि "एक रत्नद्वीप लोगों की इच्छानुसार उन्हें अनेक प्रकार के बहुमूल्य रत्न प्रदान करके अब आकाश की ओर को जारहा है।" **सेनापति** ने देखा कि "एक सिंह वज्र के पंजर को तोड़ कर कैलास को उलंघने के लिये उद्यमी है।" जयकुमार के पुत्र **अनन्तवीर्य** ने देखा कि चन्द्रमा सर्वत्र अपना प्रकाश फैलाकर ताराओं सहित अब दृष्टि से अगोचर हो रहा है।" चक्रवर्ती की पटरानी **सुभद्रा** ने देखा कि "श्री ऋषभदेव की रानी यशस्वती और सुनन्दा के साथ बैठी हुई इन्द्रानी शोक कर रही है।" बनारस के राजा **चित्रांगद** (अकम्पन का पुत्र) ने देखा कि "सूर्य पृथ्वी तल पर अपना प्रकाश पूर्णरूप से फैलाकर आकाश में ऊर्ध्वगति से उड़ा जारहा है।"

इस प्रकार भरत आदि अष्ट मनुष्यों ने श्री ऋषभ भगवान के निर्वाणगमन की

नामकर्म, (३६,३७) सुरभि, असुरभि, ये दो गन्ध नामकर्म, (३८--४२) तिक्त, कटुक, कषायल, आम्ल, मधुर, ये ५ रस नामकर्म, (४३--५०) कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष ये ८ स्पर्श नामकर्म, (५१--७०) स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, देवगति, देवगत्यानुपूर्व्य, विहायोगति, विहायोगत्यानुपूर्व्य, दुर्भग, निर्माण, अयशस्कीर्ति, अनादेय, प्रत्येक, अपर्याप्ति, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, ये २० भी नामकर्म की प्रकृतियां, (७१) साता व असाता वेदनीय कर्म में से अनुदयरूप एक, (७२) नीच गोत्र कर्म। इस प्रकार ७० प्रकृतियां तो नाम कर्म की व एक वेदनीय कर्म की और एक गोत्र कर्म की, ये ७२ प्रकृतियां १४ वें गुणस्थान के अन्त समय से पूर्व के समय में नष्ट हुई ॥

नोट २—उपरोक्त १३ प्रकृतियों का विवरण निम्न प्रकार है:—

(१) साता व असाता वेदनीय कर्म में से शेष उदयरूप एक, (२) मनुष्यायु, (३) उच्चगोत्र, (४) मनुष्यगति, (५) पंचेन्द्रिय जाति, (६) त्रस नामकर्म, (७) बादर नामकर्म, (८) पर्याप्ति नामकर्म, (९) सुभग,

के एक अन्तर्मुहूर्त काल में "व्युपरतक्रियानिवृति" नाम के शुक्लध्यान के चौथे पाए से उपान्त समय में अर्थात् अन्तिम समय से पूर्व के समय में अघातिया कर्मों की शेष ८५ प्रकृतियों में से ७२ प्रकृतियों को और अन्तिम समय में शेष १३ प्रकृतियों को नष्ट करके **श्री ऋषभदेव भगवान्** एक समय मात्र कालमें **सिद्धालय** में जा विराजे और इस प्रकार निर्वाण पद प्राप्त करके क्षायिक सम्यक्त्व, अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व, और अव्याबाधत्व, इन अष्ट मुख्य गुण युक्त नित्यनिरंजन ज्योतिस्वरूप होगये।

नोट१—उपरोक्त ७२ प्रकृतियों का विवरण— (१-५) औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, और कार्मण ये पांच शरीर-नामकर्म, (६-१०) औदारिक आदि ५ शरीरबन्धन-नामकर्म, (११--१५) औदारिक आदि ५ संघात नामकर्म, (१६-२१) समचतुरस्र, न्यग्रोध परिमंडल, स्वाति, कुब्जक, वामन, और हुंडक, ये ६ संस्थान नामकर्म, (२२--२४) औदारिक आदि ३ अंगोपांग नामकर्म, (२५--३०) वज्रऋषभ नाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलित, असंप्राप्त-सृपाटिका, ये ६ संहनन, (३१--३५) कृष्ण, नील, रक्त, पीत, स्वेत, ये ५ वर्ण

संस्कार किया। और यथाक्रम तीनों अग्निकुंडों से भस्म ले लेकर इन्द्रादिक देवों व अन्य सर्व उपस्थित जनों ने बड़ी भक्ति के साथ अपने २ मस्तक, दोनों भुजाओं, कंठ और हृदयस्थान पर लगाई।

इस प्रकार मोक्ष कल्याणक सम्बन्धी क्रिया से निवृत्त होकर इन्द्रादिक देव सब अपने २ स्थान को चले गये। इस समय इष्टवियोग से उत्पन्न और स्नेह से प्रज्वलित महाराज भरत की शोकाग्नि जग उठी तो उसे शान्त करने के लिये श्री ऋषभजिन के मुख्य गणधर "श्री वृषभसेन" ने अपने व भगवान ऋषभ से संबन्धित सर्वजनोंके पूर्वजन्मोंका कथन संक्षिप्तरूपसे अलग २ सुनाकर(देखो पृष्ठ २७) भरतेश से कहा कि इस जन्ममरण रूप संसार में प्राणियों को इसी प्रकार इष्ट वियोग व अनिष्ट संयोग आदि के अनेकानेक कष्ट बारम्बार उठाने पड़ते हैं और अन्तमें अकस्मात् नष्ट भी होजाते हैं। अय भरत! तू इस बात को भले प्रकार जानता हुआ भी अपने हृदय में क्यों विषाद करता है? हे संसार का स्वरूप जानने वाले भरत! क्या तू नहीं जानता कि अनादि काल से परिभ्रमण करते हुए प्रत्येक जीव को माता पिता भ्राता आदि के सम्बन्ध अगणित प्राणियों के साथ अगणित बार

(१०) आदेय, (११) यशस्कीर्ति, (१२) तीर्थंकर, (१३) मनुष्यगत्यानुपूर्व्य । इस प्रकार वेदनीय कर्म की १, आयु कर्म की १, गोत्र कर्म की १ और नाम कर्म की शेष १०, ये १३ प्रकृतियां १४ वें गुणस्थान के अन्तिम समय में नष्ट हुई ॥

(इन सर्व कर्म प्रकृतियों का विशेष विवरण आदि जानने के लिए देखो "श्री वृ० जैन शब्दार्णव" में शब्द "अघातिया कर्म" की व्याख्या, पृष्ठ ७६–८५)

तत्पश्चात् उसी समय इन्द्रादिक देवों ने आकर विधिपूर्वक मोक्ष कल्याणक की पूजा की। भगवान के स्वच्छ और निर्मल परमौदारिक शरीरपिंड को बड़ी विनय और भक्ति के साथ एक रत्नमय पालकी में विराजमान करके अग्निकुमार जाति के देवेन्द्र के रत्नमय मुकुट से उत्पन्न हुई अग्नि द्वारा अगरु, चन्दन, कपूर, केशर और घृत आदि शुद्ध सुगन्धित पदार्थों के साथ संस्कृत किया। पश्चात् भगवान के साथ योग निरोध की क्रिया पूर्वक जिन जिन केवलज्ञान प्राप्त गणधरादि मुनियों ने निर्वाण पद पाया उनमें से गणधरों के शरीर का तो तीर्थंकर-अग्निकुंड के दाईं ओर और शेष मुनियों के शरीर का बाईं ओर अग्नि

और राज्य वैभव से पूर्ण विरक्त होकर युवराज "**अर्ककीर्ति**" को राज्य सिंहासन देदिया। उत्कृष्ट विरक्ततापूर्ण परिणामों के बल से **मुनि दीक्षा** ग्रहण करते ही उसे पहिले तो **मनः पर्यय ज्ञान** और फिर उसके पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्त ही में घातिया कर्मों की सर्व ४७ प्रकृति और अघातिया की १६; सब ६३ प्रकृतियों के क्षय होजाने से **केवलज्ञान** की प्राप्ति होगई। पश्चात् अनेक देशों में विहार करते हुए अपने धर्मोपदेश द्वारा अनेक प्राणियों को सुमार्ग पर लगाया और आयु के अन्तिम मुहूर्त में योग निरोध कर शेष अघातिया कर्मों को खपाकर **निर्वाणपद** प्राप्तकर लिया। इसी प्रकार वृषभसेन आदि शेष गणधरों ने भी अपने २ समय पर कर्मों को नष्ट कर अविनाशी पद पाया।

नोट १---श्री ऋषभदेव की पंच कल्याणक तिथि व नक्षत्रादि:—

(१) गर्भ—आषाढ़ कृ० २, नक्षत्र, उत्तराषाढ़, रात्रि का अन्तिम पहर
(२) जन्म—चैत्र कृ० ९, " " प्रातः काल

होते और छूटते रहे हैं। फिर अज्ञानी जीवों के समान तू व्यर्थ ही क्यों मोह में फँसकर इतना शोकातुर हो रहा है। भगवान ऋषभ तो संसार के सर्व कष्टों से छूटकर नित्यानन्द पद को प्राप्त कर चुके हैं, उनकी इस अनन्त सुख सम्पत्ति की प्राप्ति पर उनका कोई शत्रु भले ही शोकातुर हो, पर तुझे तो इन्द्रादि देवों के समान पूर्ण हर्ष ही मनाना चाहिये न कि शत्रुओं के समान शोक। हां भगवान के जिस स्थूल शरीर को तू चर्मचक्षुओं से आजतक अवलोकन करता रहा है उसी शरीर के ध्यानस्थ दिव्य रूप को अब हृदयस्थ करके अभ्यन्तर चक्षु-दृष्टि से निरन्तर उनका दर्शन करता हुआ परम लाभ उठा और दुखदाई शोक को हृदय से दूर करके आनन्द में मग्न रह। इत्यादि वचन रूपी जल वृष्टिसे भरत की शोकाग्नि जब सब शान्त होगई तो श्री गणधर देव को नमस्कार कर बड़ी विभूति के साथ कैलास से चलकर वह अपनी राजधानी अयोध्या में आगया।

तदनन्तर कमलपत्र पर जलविन्दु के समान अलिप्त रहकर अत्यन्त विरक्त भाव से कुछ काल तक राज्य सुख भोगने के पश्चात् किसी एक दिन दर्पण में मुख देखते हुए भरत ने अपने शिर में एक श्वेत बाल देखा जिसे साक्षात यमदूत समझकर

ऋ.५.

इस प्रकार श्री ऋषभदेव भगवान की आयु गर्भ काल सहित ८४ लाख पूर्व, ७ मास व १२ दिन की थी। और यदि गर्भकाल के ९ मास ७ दिन गणनामें न लिए जायें तो उन की आयु १ मास २५ दिन कम ८४ लाख पूर्व की थी ।

नोट ३—वर्तमान अवसर्पिणी काल में भरत क्षेत्र के प्रसिद्ध प्रथम पुरुषः—

[१] प्रथम मनु या कुलकर—प्रतिश्रुत
[२] प्रथम तीर्थंकर—श्री ऋषभदेव
[३] ,, चक्रवर्ती—भरत
[४] ,, कामदेव—बाहुबली
[५] ,, बलभद्र---विजय
[६] ,, नारायण—त्रिपृष्ट
[७] ,, प्रतिनारायण---अश्वग्रीव
[८] ,, नारद—भीम
[९] ,, रुद्र—भीमवली
[१०] ,, केवली—श्री ऋषभदेव
[११] ,, मुक्तगामी—अनन्त वीर्य [श्री ऋषभ देव का एक पुत्र]

से तप ग्रहण-तिथि तक का कुमार काल व राज्य काल मिलकर पूरा ८३ लाख पूर्व

(३) तप—चैत्र कृ० ९, ,, ,, सायं काल
(४) केवल ज्ञान—फाल्गुन कृ० ११, ,, ,, पूर्वान्ह काल
(५) निर्वाण—माघ कृ० १४, ,, ,, पूर्वान्ह काल

नोट २—श्री ऋषभ देव का आयु विभागः—

	पूर्व्व	वर्ष	मास	दिन
(१) गर्भकाल ९ मास ७ दिन	०	०	९	७
(२) कुमार काल २० लाख पूर्व्व*	२० लाख	०	०	०
(३) राज्य काल ६३ लाख पूर्व्व*	६३ लाख	०	०	०
(४) तप काल (छद्मस्थावस्था) २८ दिन कम १००० वर्ष	०	९९९	११	२
(५) केवलज्ञान काल १००० वर्ष व २७ दिन कम १ लाख पूर्व्व	१लाख	−१०००	०	−२७
जोड़........	८४ लाख	०	७	१२

*जन्म-तिथि और तप ग्रहण-तिथि एकही अर्थात् चैत्र कृ०९ है, अतः जन्म तिथि

(२८) प्रथम अनेक विद्या व कला प्रवर्तक व शिक्षक—श्री ऋषभ देव

(२९) ,, ग्रन्थ रचयिता—श्री ऋषभदेव

(३०) ,, लेखन प्रणाली प्रवर्तक—श्री ऋषभदेव

(३१) ,, अक्षरादि विद्या सीखने वाला शिष्य—ब्राह्मी पुत्री

(३२) ,, अङ्कादि (गणित आदि) विद्या सीखने वाला शिष्य—सुन्दरी पुत्री

(३३) ,, ज्योतिष विद्या प्रवर्तक—द्वितीय मनु "सन्मति"

(३४) ,, हाथी घोड़ा आदि से सवारी का काम लेने का शिक्षक—सप्तम मनु "विमल वाहन"

(३५) ,, सन्तान पालन-शिक्षक—दशम मनु "अभिचन्द्र"

(३६) ,, जलयान शिक्षक—१२ वां मनु "मरुदेव"

(३७) ,, बाल ब्रह्मचारिणी—ब्राह्मी व सुन्दरी ।

(३८) ,, शासक (राजा)—प्रतिश्रुति (पहिला मनु) ।

(३९) ,, दण्ड नीति प्रवर्तक—प्रतिश्रुति (पहिला मनु) ।

ऋ.पु. (१०) आदेय. (११) यशस्कीर्ति (१२) तीर्थंकर (१३) [illegible]

[१४] ,, आर्यिका—ब्राह्मी [श्री ऋषभ देव की पुत्री]

[१५] ,, श्रावक—श्रुतकीर्ति [१६] प्रथम श्राविका—प्रियव्रता

[१७] ,, आहारदानी—श्रेयांश [हस्तिनापुर नरेश]

[१८] ,, स्वयंवर पद्धति प्रवर्तक—अकम्पन [काशी नरेश]

[१९] ,, स्वयंवर-रीति के अनुकूल विवाहित राजपुत्री—सुलोचना

[२०] ,, ,, ,, ,, ,, राजपुत्र—जयकुमार (मेघेश्वर)

[२१] ,, इक्ष्वाकु वंशी राजा—श्री ऋषभ देव [इक्ष्वाकु]

[२२] ,, सूर्य वंशी राजा—अर्क कीर्ति [भरत का पुत्र]

[२३] ,, चन्द्र वंशी राजा—सोमेश महाबल [बाहुबली का पुत्र]

[२४] ,, हरि वंशी राजा—हरिकान्त

[२५] ,, नाथ वंशी राजा—अकम्पन [श्रीधर]

[२६] ,, उग्र वंशी राजा—काश्यप [मघवा]

[२७] ,, कुरुवंशी राजा—सोम प्रभ [कुरुराज]

पहिले पहल मनुष्यों को दृष्टिगोचर होने लगने की मिती—आषाढ़ शु० १५ (सायंकाल)।

(४९) प्रकृति जन्य ऐतिहासिक काल की प्रारम्भिक मिती—आषाढ़ शु० १५ (जब प्रथम मनु के समय में चन्द्र सूर्य दृष्टिगोचर हुए)।

(५०) ज्योतिरांग जाति के कल्पवृक्षों की ज्योति अति मन्द पड़ जाने से तारागण व नक्षत्रों के दीखने लगने का समय—सन्मति नामक दूसरे कुलकर का शासन काल।

(५१) पहिले पहल कुछ न कुछ मेघ पटल (बादल) बनकर कुछ कुछ जलवर्षा प्रारंभ होने का समय—मरुदेव नामक १२ वें कुलकर का शासन काल।

(५२) विद्याऽध्ययनार्थ प्रथम रचित ग्रन्थ—स्वायंभुव व्याकरण (श्री ऋषभदेव ने रचा)।

(५३) वर्णव्यवस्था स्थिर होने की मिती—आषाढ़ कृ० १

(५४) आजीविकार्थ असि मसि आदि षटकर्मोपदेश की प्रारम्भिक मिती—आषाढ़ कृ० १

(४२) आहारांग (भोजनांग) जातिके कल्प वृक्ष नष्ट होने पर स्वयं उत्पन्न धान्य को खाने के काम में लाने की विधि वताने वाला प्रथम पुरुष—नाभिराय (१४ वें मनु)

(४३) भाजनांग जाति के कल्पवृक्ष नष्ट होने पर थाली आदि मट्टी के वर्तन बनाने की विधि वताने वाला प्रथम पुरुष—नाभिराय।

(४४) आवश्यक्ता पड़ने पर बच्चों की नाल काटने की विधि वताने वाला प्रथम पुरुष—नाभिराय।

(४५) पुत्र को अपना राज सिंहासन देकर राजा बनाने वाला प्रथम व्यक्ति—नाभिराय।

(४६) वर्ण व्यवस्था स्थिर करने वाला प्रथम व्यक्ति—श्री ऋषभदेव

(४७) षटकर्मोपदेशक प्रथम पुरुष—श्री ऋषभदेव।

(४८) ज्योतिरांग जाति के कल्पवृक्षों की ज्योति मन्द पड़ जाने पर चन्द्र सूर्य

(६) महाबल (सोमेश)—बाहुबली का ज्येष्ठपुत्र, चन्द्रवंश का पहिला राजा।
(७) भूतबली—बाहुबली का लघु पुत्र।
(८) सोमप्रभ—हस्तिनापुर नरेश, कुरुवंश का पहिला राजा।
(९) हरिकान्त—हरिवंश का प्रथम राजा।
(१०) अकम्पन—काशी नरेश, नाथवंश का पहिला राजा। स्वयंवर की पद्धति का प्रवर्तक।
(११) काश्यप—उग्रवंश का पहिला राजा।
(१२) मारीचि—भरतचक्री का एक पुत्र, सांख्यमत का प्रवर्तक।
(१३) श्रेयांस—सोमप्रभ का लघु भ्राता, प्रथम आहारदानी।
(१४) अनन्तवीर्य—भरतचक्री का एक लघुभ्राता, इस युग में सबसे पहिले मुक्तिपद प्राप्त करने वाला पुरुष।
(१५) जयकुमार (मेघेश्वर)—हस्तिनापुर नरेश का पुत्र।
(१६) अनन्तसेन—अनन्तवीर्य का पुत्र। श्री ऋषभ का पौत्र।
(१७) सत्यवादी अनन्तवीर्य—जयकुमार का ज्येष्ठपुत्र।

(५५) कृतयुग (कर्म भूमि) की प्रारम्भिक मिती—आषाढ़ कृ॰ १

(५६) दुःषमा सुषमा नामक चतुर्थकाल की प्रारम्भिक मिती–कार्तिक कृ॰ १

(५७) दुःषमा नामक पंचम काल की प्रारम्भिक मिती—श्रावण कृ॰ १

(५८) सब से पहिली रची हुई नगरी—अयोध्यापुरी।

(५९) सब से पहिले बसाया गया देश—सुकोशल।

(६०) अयोध्यापुरी बसने की मिती–पौष कृ॰ २

नोट ४—श्री ऋषभदेव भगवान के समय के सर्व प्रसिद्ध स्त्री पुरुषः—

(१) नाभिराय—भगवान ऋषभ के पिता।

(२) भरत—श्री ऋषभदेव का सब से बड़ा पुत्र, प्रथम चक्री।

(३) वृषभसेन—भरतचक्री का लघुभ्राता, प्रथम गणधर।

(४) बाहुबली—भरतचक्री का सौतेला भाई, प्रथम कामदेव।

(५) अर्ककीर्ति—भरतचक्री का ज्येष्टपुत्र, सूर्यवंश का प्रथम राजा।

(३८, ३९) चिलात, आवर्त—पश्चिम दिशाके उत्तरी म्लेच्छ खंडके दो म्लेच्छ राजा।

(४०) आनन्द—श्री ऋषभदेव भगवान की दिव्यध्वनि उनके मुक्तिगमन से १४ दिन पूर्व बन्द होजाने का समाचार सुनाने वाला पुरुष।

(४१) मरुदेवी—भगवान ऋषभ की माता।

(४२, ४३) यशस्वती, सुनन्दा—भगवान ऋषभ की स्त्रियां।

(४४) ब्राह्मी—भरतचक्री की छोटी वहिन।

(४५) सुन्दरी—बाहुबली की छोटी बहिन।

(४६) प्रियव्रता—वर्तमान युग (अवसर्पिणी काल) की प्रथम श्राविका।

(४७) सुभद्रा—भरतचक्रवर्ती की पटरानी।

(४८) सुप्रभा—काशीनरेश अकम्पन की रानी।

(४९) लक्ष्मीवती—जयकुमार की माता।

(५०) सुलोचना—जयकुमार की स्त्री, काशीनरेश अकम्पन की पुत्री।

(५१) अक्षमाला—सुलोचना की छोटी वहिन, अर्ककीर्ति की स्त्री। इति ॥

पु.

(१८) श्रुतकीर्ति—इस युग का प्रथम श्रावक।

(१९) हेमांगदत्त—काशीनरेश अकम्पन का ज्येष्ठ पुत्र।

(२०-२३) श्रुतार्थ, सिद्धार्थ, सर्वार्थ, सुमति—काशीनरेश अकम्पन के ४ मंत्री।

(२४) अनवद्यमति—अर्ककीर्ति का मंत्री।

(२५) अनन्तविजय—वृषभसेन का लघुभ्राता।

(२६) महासेन (अनन्तवीर्य नं० १४)—अनन्त विजय का लघुभ्राता।

(२७) अच्युत (श्रीषेण)—महासेन का लघुभ्राता।

(२८) वीर (गुणसेन)—अच्युत का लघुभ्राता।

(२९) वरवीर (जयसेन)—वीर का लघु भ्राता।

(३०) अयोध्य—भरतचक्री का सेनापति।

(३१) बुद्धिसागर—भरतचक्री का पुरोहित।

(३२) कामवृष्टि—भरतचक्री का गृहपति (भण्डारी)।

(३३) भद्रमुख—भरतचक्री का शिलावट (शिल्पाचार्य)।

(३४, ३५) कच्छ, महाकच्छ—भगवान ऋषभ के श्वशुर।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८	१२	भूषांगणांग, पान,	भूषणांग, पानांग
३९	१३	अच्युतेन्द्र	प्रतीन्द्र
४५	६	काली	काल की
”	१२	सर्वसिद्धि	सर्वार्थसिद्धि
५३	१४	दिवस की थी	दिवस की अथवा ८४ लाख पूर्व और ७ मास १२ दिन की थी।
७८	१०	पत्र	पुत्र
८२	६	राज्यसम्मति	राज्य-सम्पत्ति
”	७	तद्न्तर	तदनन्तर
”	८	फर	कर
”	९	पदापर्ण	पदार्पण
९२	१०	इस में उद्यान	इस उद्यान

नोट--श्री आदिपुराण में सर्व ४७ पर्व और ११०९४ श्लोक (अनुष्टुप छन्द) हैं, जिनमें से ४२ पूरे पर्व और ४३वें पर्वके केवल ३ श्लोक (सब ९३९७ श्लोक) तो श्री जिन सेनाचार्य रचित हैं और शेष ५ पर्वों के १६९७ (१७००-३) श्लोक उनके शिष्य श्री गुणभद्राचार्य रचित हैं। और श्रीयुत पं० लालाराम जी कृत हिंदी भाषा टीका लगभग ३० सहस्र श्लोक प्रमाण है।
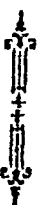
इति श्री बुलन्दशहर नगर निवासी श्रीयुत लाला देवीदासात्मज
पं० बिहारीलाल, "चैतन्य" विरचित हिन्दी गद्यात्मक
"श्री संक्षिप्तचतुर्विंशतिजिनपुराण" का प्रथमखंड
श्री संक्षिप्त-ऋषभ पुराण
बिजनौर नगर में शुभ मिती श्रावण कृ० १३ शुद्ध वीर निर्वाण
सम्वत् २४७१ (प्रचलित २४५२), ता० ६ अगस्त सन् १९२६

विषय सूची

अ.पु. पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९४	१२, १३	पश्चात् ··· क्षय	और नरकायु व तिर्यंचायु की सत्ता ही कई जन्म पूर्व से न थी अर्थात्
९५	१, २	किया	भगवान ने दो जन्म पूर्व ७ प्रकृ० का तो क्षय किया और दो का पहिले ही से अभाव था, एवं ९ प्रकृ० का सत्ता से अभाव किया
९५	३,४,५	इस जन्म में ··· करदी।	इस जन्म में देवायु की सत्ता तो थी ही नहीं और ७ वें गुणस्थान में पहुंच कर उसकी बन्धव्युच्छित्ति भी करदी॥
९९	७	की	का
"	१८	अजीव विचन्त	अजीवविचय
१५८	६	२९०-३१४	२९०-४०३
१६५	९	५१-५३	५१-५४
१६७	३	हो ही रथा	हो ही रहा
१७१	८	सुनाकर भरतेश	सुनाकर (देखो पृ० २७ व ४३ से ४९ तक) भरतेश।
१७२	८	उटा	उठा
"	१३	कुछ [illegible]	कुछ [illegible]

से सर्व १२१ पूजाओं का संग्रह है। जितने पाठ आजतक छपे वे सर्व तीर्थंकर क्रम से केवल २५ पूजाओं का संग्रह हैं, कल्याणक क्रम से १२१ पूजाओं का संग्रह नहीं हैं। कवि वर का जीवन चरित्र व पांचों कल्याणकों के दो शुद्ध तिथिकोष्ठ भी (एक तीर्थंकर क्रम से और दूसरा तिथि क्रम से) श्री उत्तर पुराणादि आर्ष ग्रन्थों से पूर्णतः शुद्ध करके नक्षत्रों सहित दिये गये हैं। निछावर सजिल्द की केवल ॥=)।

२. श्री वृहत् जैनशब्दार्णव प्रथम खंड-पृष्ठ ३५२, मूल्य ३) सजिल्द ३॥) व ४)

यह महानकोष ग्रंथ न केवल जैन शब्दों का अर्थ और उनकी व्याख्या समझनेहीं के लिये उपयोगी है वरन् प्रत्येक हिन्दी जानने वाले जैन स्त्री पुरुष को इसकी कम से कम एक बार स्वाध्याय कर लेने से प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग, इन चारों ही अनुयोगों के सैकड़ों सहस्रों जैन ग्रंथोंके अनेकानेक विषयों का ज्ञान इस एक ही ग्रन्थरत्न द्वारा प्राप्त करके सैकड़ों जैन ग्रन्थों की स्वाध्याय का लाभ भी हो सकेगा।

नोट—जैनमित्र, जैन गज़ट, माधुरी, जैन जगत, वीर, जैनगज़ट अङ्गरेज़ी, इत्यादि अनेक जैन व अजैन समाचार पत्रों ने इस महान जैन कोष ग्रन्थ की बड़े उत्तम से उत्तम शब्दों में प्रशंसा की है जिनका थोड़ा २ अंश भी यहां स्थानाभाव से नहीं दिया जा सका है पाठक चाहें तो हम से अलग मँगा कर देख सकते हैं।

३ अग्रवाल इतिहास— मूल्य ≡)

४ संस्कृत हिन्दी व्याकरण शब्द रत्नाकर— मूल्य १)

५ संक्षिप्त जीवन चरित्र—"श्री बृ० जैन शब्दार्णव" आदि अनेक ग्रन्थ रत्नों के लेखक महानुभाव का संक्षिप्त परिचय उनकी जन्मकुन्डली आदि सहित। मू० ≡)॥

६ आश्चर्य जनक स्मरण शक्ति और उसके अद्भुत कर्तब—मूल्य ≡)

७ श्री ऋषभपुराण—मूल्य ।)

८ संक्षिप्त आदि पुराण—मूल्य ।||)

नोट—नं० ७ की ५०० प्रति एक भाई के दान द्रव्य से प्रकाशित हुई हैं। अतः ग्रन्थरत्न नं० ७ की ५०० प्रति निकल चुकने पर नं० ७,८ दोनों की एक निछावर १)

९ श्री जम्बु स्वामी चरित—अन्तिम केवली भगवान श्री जम्बू स्वामी का संक्षिप्त जीवन चरित्र। निछावर केवल -)॥ —शान्तिचन्द्र जैन (बुलन्दशहरी)

१०. श्री जम्बूकुमार नाटक—अन्तिम केवली श्री जम्बूकुमारजी का स्टेज पर खेलने योग्य बड़ा ही मनोहर दृश्य काव्य है। यह नाटक ५ अंकों, ११ दृश्यों और कई गर्भांकों में विभाजित है। प्रेस में प्रकाशित हो रहा है। पृष्ठ संख्या लगभग १५० और मूल्य लगभग ॥) रहेगा।

"वीर प्रेस" बिजनौर में छपी